MAY. Jue
5½

BE MAN

ਮਨੁੱਖ ਬਣੋ

انسان بنو

विषय-सूची—

नं०	विषय	पृष्ठ
		१
१	मनुष्य बनो कार्यालय से प्रकाशित पुस्तकें	२
२	शिव० प्रका० मंडल की पुस्तकें व निवेदन	३
३	स्तुति	४
४	पर० फ़क़ीरचन्द के सतसंग के वचन	१६
५	ब्रह्माण्डों की सैर	२६
६	नवीन वर्ष का आदेश	३२
७	धार्मिक साम्प्र० और प्रांतीय पक्षपात आदि	३६
८	बेसाखी नवीन वर्ष	५१
९	विनती	५२
१०	हमारी जिभ्या	
११	पर० फ़क़ीर साहब जी महा० का पत्र पूज्य हुज़ूर नरायनसिंह जी के नाम	५४

मनुष्य बनो कार्यालय से प्रकाशित अमूल्य पुस्तकों के नाम समूल्य पाठकों के लाभार्थ दिये जाते हैं जिनके अध्ययन से सुखमय जीवन व्यतीत करने का रहस्य सहज ही प्राप्त हो सकता है।

नाम महात्म	१)	शिव संहिता	१॥)
मानवधर्मप्रकाश उर्दू हिंदी	१॥)	सचाई	।)
फ़क़ीर शब्दावली ,,	।=)	सुमेरु पर्वत हिंदी	१॥)
सतविद्याप्रकाश ,,	।=)	ट्रुथ एन्ड रीयलिटी अँ०	।=)
इब्राहीम अधम ,,	॥=)	परमार्थ सुधार	।॥)
उन्नति मार्ग	।)	निष्कलंक अवतार ,,	॥)
आवागमन ,,	।॥)	विश्व हितैषी उर्दू	१॥)
महारामायण हिंदी	३॥), ५)	५० वर्षीय अनुभव हिंदी	॥)

... लाल जी महा० कृत शिवसाहित्य

—प्रकाशन मंडल की अमूल्य पुस्तकें—

कानून ख्याल	१)	सहज विचार	१)
कथा कल्पद्रुम	१)	दयाल संहिता	।।।)
कथनान्जलि	।।।)	पंथ सन्देश	१-)
गिरहदार मोती	१)	कबीर जोग भाग १	१-)
द्रष्टान्त सन्देश	।।।)	" " भाग २	१।)
राजस्थान की ललित लल०	।।।)	गुटका शब्द संग्रह	।)
परमार्थ सुधार	।।।)	राजभक्तिनी मीराबाई	।।।)
आदर्श भारतीय वीरांगनायें	।।)	राज भक्त गोपीचंद, सुदामा	१)
ललित उपदेशान्जलि	।।)	आदर्श भारतीय महिलायें	।।।)
शिव संहिता	१।।)	शब्द सार	।।।)
विष्णु संहिता	१।।)	शाही पति परायण	१।।)
महारामायण	५)	कर्म सुधार	।।।)
शब्द गुन्जार भाग १	।।।)		

* निवेदन *

हम गत अनेक मास से यह प्रार्थना करते चले आ रहे हैं कि प्रेमी पाठक गण अपना वार्षिक मूल्य भेजने की कृपा करें किंतु खेद के साथ लिखना पड़ता है कि अनेक महानुभावों ने और विशेषत; हैदराबाद, दकन तथा उसके समीपवर्ती पाठकों ने हमारी प्रार्थना की ओर ध्यान देने की कृपा नहीं की है। ऐसे महानुभावों का ध्यान उस ओर पुनः आकर्षित किया जाता है। आशा है भाई राजेश्वरराव जी, आनन्दराव जी, श्यामराव जी पिंगलरङ्गराव जी तथा ठा० शंकर सिंह जी गत वर्ष की भाँति इस वर्ष भी इस कार्य में हमारा हाथ बटाकर 'मनुष्य बनो' के प्रचार में सहयोग दें।

R.S.

मनुष्य बनो

ओ३म् पूर्णमदः पूर्णमिदंपूर्णात्पूर्ण मुदच्यते ।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥

वर्ष ४ | बैसाख सं० २०१३ मई १९५६ | सं० ८

❀ स्तुति ❀

तेरी लीला कौन समझे, तू तो अपरम्पार है।
एक दृष्टी से तेरी, दुखियों का बेड़ा पार है॥

दुख में सुख रहता है, तो हमको नया कुछ भी नहीं।
मौज को क्या जीव जाने, दुविधा का सिर भार है॥

दुख में सुख रहता है छिपकर, कष्ट का परिणाम सुख।
बन्ध में मुक्ती की छाया, मुक्ति बंधाकार है॥

काम जो औरों के आये, बस वही इन्सान है।
बातें चाहे कुछ बनाये, आदमी बेकार है॥

राधास्वामी पूरे सतगुरु ने बताया भेद को।
मन में अब चिन्ता नहीं, सुखदायी यह संसार है॥

परमदयाल फ़क़ीरसाहब के सतसंग के वचन

* शब्द *

धीरज धरो वचन गुरु गहो। अमृत पियो गगन चढ़ रहो॥
दूर न जानो सतगुरु पास। निसिदिन करो चरन विश्वास॥
सागर मेहर दया की मौज। राधास्वामी दीन्हीं अचरज चौज
खेल खिलावें बाल समान। देखे मात हरष मन आन॥
रक्षक शब्द जान और प्रान। सो पहलू छोड़े न निदान॥
मन की गढ़त करावें दम दम। वह हैं मित्र वही हैं हमदम॥
भूल चूक बख्शें वह छिनछिन। सङ्ग रहें इसके वह निसदिन॥
यह मन कच्चा बूझ न जाने। उनकी गति कैसे पहिंचाने॥
जक्त जाल में रहा भुलाई। सुरत शब्द में नहीं जमाई॥
या से सोग विजोग सतावे। मन का घाट हाथ नहिं आवे॥
गुरु कुञ्जी जो विसरे नाहीं। घट ताला छिन में खुलजाई॥
खुले घाट तब सुन में देखे। धुन की खबर रूप निज पेखे॥
चढ़े अधर जब नाम समावे। रस पावे सूरत घर आवे॥
रतन खान घट में जब खुले। दुक्ख दर्द और दुर्मति टले॥
मौज निहारो सबर सम्हारो। भर्म अँधेरा कौतुक टारो॥
अमलअचल पकड़ो गुरुचरना। सुक्ख परापत दुख सब हरना॥
यह संसार अग्नि भंडार। शीतल जल सतगुरु आधार॥
बड़े भाग जिन सतगुरु पाये। चौरासी से तुरत हटाये॥
दुक्ख सुक्ख जो व्यापत होई। पिछले कर्म भोग हैं सोई॥
कोई दिन सोग रोग हट जावें। देर नहीं जल्दी भुगतावें॥

दोहा—राधास्वामी रक्षक जीव के, जीव न जाने भेद।
गुरु चरित्र जाने नहीं, रहे कर्म के खेद॥
खेद मिटे गुरु दरस से, और न कोई उपाय।
सो दर्शन जल्दी मिलें, बहुत कहा मैं गाय॥

धीरज धरना मत घबराना, चित ठहराना।
रूप समाना, नित गुन गाना नहीं बहाना॥
यही निशाना ज्यों पपिहा स्वाँती आस॥२३॥
घट में रहना कहीं न बहना, मन में सहना।
रस ही लेना, धीरज गहना मर्म न कहना॥
ज्यों जल मीना राधास्वामी पास॥२४॥
आगे दया मेहर सतगुरु की। वहीं दरसावें वह अब धुर की॥२५
राधास्वामी बचन सुनाया। जीवन की हठ से लिखवाया॥२६॥

समस्त प्राणी शान्ति की खोज में फिरते हैं। मैं स्वयम् शान्ति की खोज में फिरा। यदि मैं अशान्त न होता तो मेरे मस्तिष्क में कोई फ़ितूर तो न था कि पागलों की भाँति जीवन व्यतीत करता। मित्रो! मैंने शान्ति प्राप्त करने के लिए लाखों उपाय किए। छोटी आयु में अपने मन्तव्य की पूर्ति के लिये कर्म आदि करने के लिये शीतल जल से स्नानादि किया करता। बहुत दिनों तक श्री कृष्ण का ध्यान लगाया और अनेक प्रकार के पापड़ बेले, किन्तु शान्ति न मिल सकी। क्यों? मुझे ज्ञान न था कि शान्ति कहाँ रहती है। और कैसे मिलती है? मैं समझा करता था कि माला फेरने, सत्य बोलने, ईमानदारी आदि योगिक क्रिया में, आरती से, मालिक की भक्ति करने से मस्ती की अवस्था उत्पन्न करने से मुझे शान्ति मिल जायगी। किन्तु मेरा अनुभव ग़लत निकला। यह सब कर्म आनन्द, प्रसन्नता देने वाले अवश्य थे।

सुनो! मन की वृत्तियाँ जब तक चंचल हैं मनुष्य शान्ति के द्वार तक नहीं पहुंच सकता। क्यों? परमपूज्य महर्षि शिवव्रतलाल जी महाराज का कथन है कि "शान्त शील में पृथ्वी की परछाँई दिखाई देती है।" मन में हिलोर अथवा चंचलता की अवस्था में कैसे कोई शान्ति पा सकता है? इसके अतिरिक्त आपको ज्ञात होना चाहिये कि यह मन उत्पन्न की हुई वस्तु है। अर्थात् मन एकनहीं अनेक

का मिश्रण है। कैसे उत्पन्न होता है, इस विषय में मैंने दशहरे के सतसंग के अवसर पर अपने विचारों को प्रकट किया था फिर दुहराता हूँ कि जब प्रकाश स्थूल तत्व में प्रविष्ट होता है तो जीव जन्तु और बोध भान उत्पन्न हो जाते हैं। यह बोध भान जो मन से भिन्न नहीं परिवर्तन शील हैं। किन्तु ऐसी अवस्था में इनका स्थायत्व से क्या अभिप्राय है। जब मन स्वयम् स्थायी नहीं तो मन से प्राप्त की हुई वस्तु में ही कब स्थायत्व हो सकता है ? इसके अतिरिक्त यह स्मरण रक्खा जाय कि मिश्रित वस्तु में मिलने, घुलने का प्राकृतिक गुण है। यह एक रहस्य, भेद या कुंजी है जो मैं इस समय आपको बता रहा हूं। स्वामी जी महाराज अपनी वाणी में कहते हैं "मरम न कहना मत घबड़ाना···"। अब समय बदल गया इसलिये विवश उस मर्म को बतलाने का समय आ गया है। वह भी अधिकारी ही समझेगा और यदि अब ऐसा न किया गया तो संसार दीवाना हो जायगा। विशेषतः पुराने पुराने सतसंगी उदास हैं और दीर्घ काल तक उनको शान्ति न मिलेगी और उनका समय व्यर्थ नष्ट हो जायगा और महात्माओं के पास फिर फिरा कर भी कोरे के कोरे रह कर अन्त समय हाथ मलते हुये यहाँ से चले जांयगे।

तनिक सावधान होकर सुनो। शान्ति तब मिलेगी जब मन से ऊँचे जाओगे। जब तक मन से शान्ति प्राप्त करने का प्रयत्न करोगे केवल अस्थाई सुख और आनन्द मिलेगा। किन्तु इस सुख के साथ दुख का सम्मिलित होना भी अनिवार्य है, क्योंकि मन की द्वन्द्व अवस्थाओं के कारण उथल पुथल और ऊट पटाँग भी सोचेगा जिसका फल मिलना भी आवश्यक है। इस हेतु मनुष्य को मन से ऊँचा आना परमावश्यक है। सार वचन में मन और सुरत के सम्वाद का उल्लेख आता है जहाँ मन कहता है "मेरा स्वाद मुझ से छोड़ा नहीं जाता है।" यह सत्य है। [illegible] की ओर इस मन

का प्राकृतिक आकर्षण है। किन्तु मन से ऊँचे आना क्या है? सुरत से भक्ति करो न कि मन से इसको समझने के लिये पूर्ण सत-गुरु के सतसंग में जाने की ओर आदेश किया गया है। वह वस्तु जिसको आपको प्राप्त करना है तो आपके पास ही किन्तु आपको उसका पता नहीं। सतसंग से आपको पता चलेगा। बिना किसी परम पुनीत के ध्यान के जो स्वयम् मन से ऊँचा रहता हो यह कार्य न बनेगा और यदि ध्यान या सतसंग ही उस गुरू का किया गया जो मन की सीमा से परे जाने की योग्यता नहीं रखता भक्त अथवा ध्यान करने वाले या सतसंगी की क्या दशा हो सकती है, आप स्वयम् ही अनुमान लगाइये। जिसका सतसंग और ध्यान करोगे उसके प्रभावों का तुम में आना आवश्यक है! इसलिये ऐसे पूर्णपुरुष का ध्यान करो जो मन से ऊँचा रहता हो। कहा गया है। 'गुरू वही जो शब्द सनेही।" इस शब्द का स्थान मन से ऊँचा है। जहाँ मन के विकार नहीं। यही शान्ति प्राप्त करने में सहायक हो सकता है। यह भी कहा गया है "तन मन वाको दीजिये जामें विषया न होय।" यह ठीक है। "विषया" क्या वस्तु है? किसी देव की दासता, किसी वस्तु का लोभ अथवा उससे स्वाद प्राप्त करने का प्रबल विचार यह सब विषया है। सांसारिक वासनाओं अथवा मन्दिर, मसजिद अथवा डेरा बनाने की इच्छा का होना और इस आशय से झूँठा सच्चा प्रोपेगंडा करना या कराना जिससे कि अभिप्राय सिद्धि हो जाय, यह भी सभी 'विषया' की कोटि हैं। संक्षेप में, किसी वस्तु को प्राप्त करके आनन्द लेना विषया है। स्पष्ट शब्दों में इच्छा विषया है।

वास्तव में पूर्ण पुरुष वह है जिसे हर्ष और शोक नहीं व्याप्त होता। गीता में भी ऐसे ही व्यक्ति को उत्तम कहा गया है। ऐसे महापुरुष का ध्यान विज्ञान के नियम के अनुसार ध्यान करने वाले को स्वयम् शान्ति की ओर ले जायगा। चूँकि प्रत्येक व्यक्ति

रेडियो स्टेशन की समानता रखता है और उससे किरणों के रूप में प्रतिक्षण प्रभाव निकला ही करते हैं। इसी प्रकार एक पूर्ण पुरुष की दशा है। उसकी संगत करने वालों पर उसके अन्तर से निकलने वाले प्रभाव जानकारी में तथा अनजानकारी में उन पर प्रभाव डालते रहते हैं। इसी सिद्धान्त पर विलायत में एक मशीन बनाई गई है जो बतलाती है कि विशेष व्यक्तियों का साझा भाई चारा अथवा स्त्री पुरुष का सम्बन्ध सफल होगा अथवा नहीं। उनके भीतर से निकलने वाले प्रभाव उनके गुण कर्म स्वभाव को उस मशीन के द्वारा प्रकट कर देते हैं जिससे जाना जा सकता है कि होने वाला सम्बन्ध अनुकूल रहेगा अथवा प्रतिकूल।

कोई कारण नहीं कि पूर्ण पुरुष के सतसंग से अधिकारी अथवा आरत लोग शान्ति और प्रसन्नता न प्राप्त करें। प्रसन्नता का होना नियमानुकूल है और यदि यह बात नहीं तो मैं समझता हूँ कि ऐसा पूर्ण पुरुष वास्तव में पूर्ण नहीं।

संसार में जो कुछ भी आप देखते हैं वह किसी न किसी सिद्धान्त पर आधारित है। शान्ति भी किसी सिद्धान्त पर आधारित है और उसका प्राप्त करना भी किसी नियम पर चलने से होगा। मन से भक्ति करने से शान्ति न मिलेगी, यह मेरे जीवन का अनुभव है। आप पूछेंगे कि फिर कैसे कार्य बनेगा? मैं कहता हूं कि इसकी औषधि अथवा इसको प्राप्त करने का केवल एक ही उपाय है। और वह है मन से ऊपर आना। अथवा दूसरे शब्दों में सुरत से भक्ती करो। मन और सुरत में भेद और अन्तर है। केवल साधक इसको पहिचान सकते हैं। विचार मन का कार्य है। इनहीं को मन समझो अथवा मन की किरणें समझो और यह इसी प्रकार मन से स्वयम् निकलती हैं जिसप्रकार दूध से किरणें सुरत मन ही का सूक्ष्म रूप है। विचार को छोड़ देने अथवा दसवें द्वार से आगे जाकर आप उसको पहिचान सकते हैं अथवा जो वस्तु विचार को शक्ति देती है वही सुरत है। अब इस विचार

से निकलने का साधन किया है ? अपने को अथवा अपनी सुरत या विचार को ऐसी वस्तु के साथ जोड़ा जिसमें मन नहीं है। और वह वस्तु गुरू की जात है। बात गूढ़ है समझाना अति कठिन है। गुरू वह बाह्य स्वरूप ही नहीं। जिसे आप देख रहे हैं। उसके यथार्थ और आन्तरिक स्वरूप की ओर दृष्टि करो।

इस समय संसार को खब्त हो रहा है। गुरू के महत्व का चारों ओर चर्चा होने के कारण गुरुओं की अधिकता और चेलों की कमी दिखाई दे रही है। जिसका परिणाम जैसा कि वाणी में आता है यह हो रहा है कि " गुरू चेले का झूँठा व्यवहार जगत में वर्ता जा रहा है। जहाँ चेले स्वार्थ, मान और सांसारिक वैभव और आनन्द प्राप्त करने पर उतारू हैं, गुरू मान, धन, धाम बनाने और बढ़ाने में तत्पर हैं। सोचिये क्या हो रहा है अध्यात्म किधर गया। सब इन्द्रिय भोगों के जाल में फँस गया।

अपने भीतर सत्त पुरुष के रूप को प्रगट करो। जब तक यह दशा उत्पन्न नहीं होती, चित की वृत्ति का निरोध नहीं हो सकता। चित्त की वृत्ति का निरोध ही मन से ऊपर आना कहलाता है। इस अवस्था में पहुंच कर ही सुरत और मनकी परीक्षा की जा सकती है। पुस्तकें पढ़ना मन की कोटि में रहना है। इससे बुद्धि विलास मिलेगा, समझ बूझ आयेगी, किन्तु शान्ति न मिलेगी। शान्ति का अनुभव शान्ति पुरुष के संग से होगा।

मनुष्य यह कहते हैं कि 'गुरू कीजै जान और पानी पीजै छान।' यह ठीक है किन्तु कठिनता यह है कि गुरू को कैसे पहिचानोगे। वह बहुत ऊंची अवस्था में रहता है। यह सब भाग्य का सौदा है। भाँपने वाले सच्चे गुरू को भांप अवश्य जाते हैं। उसकी पहिंचान की कसौटियां अवश्य किन्तु केवल सूक्ष्म ज्ञान वाले मनुष्य या भाग्यवान को यह सच्ची पहिंचान मिल सकती है।

मैं स्वयम् लोगों की आंखों में धूल डाल डालकर उनको

अपना अनुयायी बनाना नहीं चाहता। मुझे उन्हें अनुयायी बनाने से लाभ ही क्या है ? यह कार्य दया और महर के कारण किया करता हूँ और यदि गुरू का आदेश ऐसा करने का न होता तो मेरा इस ओर आकर्षित होना कुछ अर्थ रखता था। मेरी नीयत यह रहती है कि जिस प्रकार मैंने ठोकरें खाईं, आप लोग ठोकरें न खांय।

शान्ति तीर्थ स्थानों, व्यास, आगरा, दहली, बनारस आदि में नहीं मिलेगी। वह तुम्हारे अन्तर है। जिसके दर्शनों की इच्छा करते हो वह भी तुम्हारे अन्तर ही है।

"दिलमें दिलमें दिलमें है .. वह न आवो, आतिशो न गिल में है।"

मुझे शान्ति अथवा ज्ञान कहाँ से मिले ? गुरू के यहां से। उन्होंने संस्कार दिया और अन्त में जीवन अनुभव से व्यतीत करा दिया उसी क्रम में लक्ष्य-मुक्ता प्राप्त हो गया।

कहते हैं गुरुओं को सामान्यतः नर्क में स्थान मिलता है अथवा योगभ्रष्ट को नर्क मिलता है। क्यों कि जब मनुष्य का अन्तर और बाह्य भिन्न होता है अथवा दूसरे शब्दों में उनकी नीयत में अन्तर होता है तो इस संसार में वह जन साधारण की भांति सांसारिक कार्य करके अपना मार्ग लेते हैं। तात्पर्य यह है कि हमारी दृष्टि बुराई को ओर न होनी चाहिये। मैंने अपनी दृष्टि को ऊंचा करने के लिये यह कहा है।

अभी अभी मैं हैदराबाद दकन से होकर आया हूँ। मैंने वहां सतसंग में कह दिया कि "मेरी फ़ीस बहुत है।' एक सेठ ने समझा कि सम्भवतः मैं अधिक रुपया लेकर प्रसन्न हूंगा। उसने कहा महाराज जितना रुपया आप चाहैं हम देंगे। मैंने कहा सेठ साहब आपने रुपये ही को सब कुछ समझ रक्खा है। हम भीख मांगने यहां नहीं आये।' वह सहम गये। मैंने अपनी वार्ता को जारी रखते हुये कहा 'हम निजमन मांगते हैं यह हमारी फ़ीस है'।

तन, मन, धन देना सरल है किन्तु निजमन देना अति कठिन है। सफल वही हो सकता है जो निजमन देता है। निजमन देना क्या है ? ध्यान पूर्वक सत्त पुरुष की वाणी को सुनना, उस पर सोचना, विचारना, साधन करना और उसके आदेश के अनुसार चलना यह उसका अभिप्राय है।

मैं समझता हूँ ऐसे गुरू जो चौथे पद में नहीं रहते उन्हें नामदान देने और सतसंग कराने का कोई अधिकार नहीं और यदि वह ऐसा करते हैं तो मानो वह अज्ञानता का बीज संसार में अपने और दूसरों के लिए बो रहे हैं। बातें बनाना और बात है, रहनी को प्राप्त करना और बात है।

भोले भाले प्राणी साधुओं के पीछे फिरते हैं। उनको प्राप्त जो होता है वह तो अपनी श्रद्धा और विश्वास पर निर्भर है। आज कल इसी वेष में धोकेबाजों का बाजार गर्म है। धन्ना भक्त का उदाहरण आपके सम्मुख है। मूर्ति के ध्यान ही से उसका कार्य बन गया। उसने मूर्ति में पूर्णता मानी। आप भी सत्त पुरुषों को पूर्ण मानकर कार्य कीजिये जैसा कि वाणी में आया है।

मेरे विचारमें घर का मुखिया ठीक है तो घर ठीक; शासक वर्ग ठीक है तो शासन अच्छा है। इसी प्रकार यदि गुरू ठीक है तो शिष्य भी ठीक है अन्यथा दशा विपरीत होगी।

यह संसार कर्मक्षेत्र है। अपने कर्मों को ठीक रक्खो अन्यथा तुम अपनी संतान से भी क्या आशा रख सकते हो। यदि तुम चंचल हो तो सन्तान भी चंचल होगी, धोकेबाज हो तो सन्तान भी वैसी ही होगी। इसी प्रकार जैसा गुरु वैसा चेला।

एक बार मैं हजूर बाबा हरचरन जी के यहां व्यास गया। वहां संगत खड़ी देखी। बहुत से रो रहे थे। मैंने बाबाजी से कहा कभी मैं भी उनकी भांति रोया करता था। इन्हें गूढ़ रहस्य का पता नहीं। आप सचाई पसंद आत्मा हैं अतः मैं आपका सम्मान

करता हूँ उन्हें मार्ग पर लाओ। फिर मैंने संगत को कहा "आप सन्त पुरुष के अंश हो। ऋषियों की सन्तान होते हुए भिकारी बने खड़े हो। सोचो, समझो! मैं झूँठ नहीं कह रहा। बाबा सांवलेशाह के आदेश के अनुसार भीतर प्रवेश करो और पर्दा खोलो। ऐसे गुरुओं के पास जाओ जिनमें दया और प्रेम है। मैं निर्धन था। सतगुरू महाराजा महर्षिजी ने मुझे ६ वर्ष साधु-पत्र निःशुल्क भिजवाया। मुझे छाती से लगाये रक्खा। क्यों? मुझे आरत अधिकारी जाना। आजकल के गुरुओं की भांति व्यवहार न किया। यह तो उन्हें आगे बिठाते हैं जो धनवान हैं और रुपया देते रहते हैं, चाहे अधिकारी न हों। गुरू की दृष्टि बड़ी तीव्र होती है। अधिकारी, अनाधिकारी को तुरन्त ही भांप लेते हैं। किन्तु यदि गुरू स्वयम् ही कोरा है तो दूसरों को क्या देगा, सोचो!

जिसकी तलाश है वह हर वक्त पास है।
भरम और अज्ञान ही सबबे तलाश है॥

मेरी बातों के मन्तव्त को समझिये। इनके बाह्य स्वरूप पर न जाइये। मुझे निश्चय है कि आपको लाभ होगा। मुझे व्याख्यान देना अथवा भाषा की सजावट नहीं आती है।

शान्ति और शान शीघ्र नहीं मिलता, समय लगेगा। संसार की आशायें, आवश्यकतायें, इच्छायें ठोकरें आपको मार्ग से कुमार्ग पर करती रहती हैं किन्तु आपका ध्यान अपने आइडियल या लक्ष्य की ओर ही रहना चाहिये तब सफलता मिलेगी। महर्षि जी महाराज के स्वर्ण शब्दों को सुनिये 'सफलता का रहस्य'। 'सुख को लक्ष्य की ओर फेर दो और बस।'

सत्तनाम राधास्वामी नाम से शान्ति और ज्ञान मिलता है। बाबा सांवलेशाह ५ नाम का सुमिरन दे गए जिससे तुम्हारा संसार और परमार्थ दोनों बने रहें। सहसदल कँवल, त्रकुटी, सुन्न, महासुन्न और भंवरगुफा यह दुकानें हैं। वास्तविक नाम सतपद

या शान्ति इनसे आगे है। यह उनके लिए हैं जिनको मोक्ष की अभिलाषा है।

सांसारिक आवश्यकतायें यदि पूर्ण करनी हैं तो अपने अन्तर ज्योति स्वरूप अपने अन्तर में प्रकट करो। क्या तुम नहीं जानते हो कि जब अर्जुन घबरा गया तो कृष्ण जी ने उसे ज्योति स्वरूप का दर्शन कराकर युद्ध के लिए तैयार किया मेरी "मानव धर्म प्रकाश" को पढ़ो जो मनुष्य बनो कार्यालय, अलीगढ़ से मिल सकती है।

वाणी रोचक भी है और भयानक भी इसके चक्कर में न पड़ना शब्द जालम् महाजालम्" इसका वास्तविक अर्थ संतों के पास है। और वह अधिकारियों को एकान्त में बतलाते हैं। यह जन-साधारण के समझने की वस्तु नहीं। इस विषय में वाणी में आता है "बिना संत कोई भेद न जाने यह तोहि कहैं अलग में।" वाणी में जो लिखा है वह सच है। किन्तु यदि आप में उसे समझने की योग्यता नहीं है तो दोष किसका है? तुम सब सिंह हो किन्तु गीदड़ बने बैठे हो। आशा को ठीक बनाओ। अपने ऊपर भरोसा रक्खो। काम बना बनाया है। मन में और घर में शान्ती रक्खो यह अत्यन्त आवश्यक है। तुम उसी के अंश हो जिसके तुम गुण गाते रहते हो। यदि वह संसार रच लेता है तो तुम भी तो अपना संसार अपने विचार से रचते रहते हो सोचो मैं क्या कह रहा हूँ। यह स्मरण रक्खो। जो कुछ खेल तुम देख रहे हो यह सब तुम्हारे अपने ही विचार का परिणाम है। अपने विचार से तुम रोगी होते हो अपने ही विचार से तुम स्वस्थ, निर्धन होते हो और धनाढ्य होते हो। इष्ट को पूर्ण समझो। यह कैसे सम्भव हो सकता है कि तुम्हारे कार्य स्वयम न बनते जावें। धैर्य से कार्य लो। सतसंग करो। धीरज धरना, मत घबराना वाणी पढ़ें—

धीरज धरो बचन गुरु गहो।
अमृत पियो गगन चढ़ रहो ॥ इत्यादि

शब्द जिसका कि ऊपर की कड़ियों में उल्लेख है दो प्रकार के होते हैं। एक अन्तर का और दूसरा वाह्य। बुद्धि जबतक वाह्य शब्द को नहीं जकड़ती निश्चयात्मक नहीं होती। सत गुरू के बचन को गहो। इसके पश्चात् शेष उपाय हैं जब भ्रम चले गये फिर कार्य स्वयम बन जायगा अन्यथा आवागमन बना रहेगा। इसलिये आवश्यक है कि सतगुरू के बचन को पकड़ो। इसी विषय में कहा गया है कि सौ घड़ी की पूजा पाठ से दो घड़ी का सतसंग श्रेष्ठ तर है।

"तात स्वर्ग अपवर्ग सुख धरिय तुला इक अङ्ग।
तुलै न ताहि सकल मिलि जो सुख लव सतसङ्ग ॥"

पिता अपनी सम्पत्ति पुत्र को प्रेम वश देता है। इसलिए कि उसे दुख कष्ट न हो और संकट से बचे। इसी प्रकार दयाल बिना किसी अनुदान के दान करता है। उससे लाभ उठाइये।

गुरु कुञ्जी जो बिसरे नाहीं। घट ताला छिन में खुल जाई॥

गुरु कुञ्जी क्या है? जो बचन सतगुरु कहता है वह रहस्य, सार या भेद ही वास्तविकता अथवा कुञ्जी है। मैं कहता हूँ कि आप लोगों ने महापुरुषों और हुज़ूर साँवलेशाह की बातों पर विचार नहीं किया। यदि विचार करते और उन्हें अपनाते तो फिर दुख कैसे होता। वह कहा करते थे "सत् पुरुष झूँठ नहीं बोलता" किन्तु आप लोगों ने उस पर अधिक ध्यान नहीं दिया।

नाम के जपते रहने मे और सुरत को शब्द में पिरोते पिरोते अशब्द गति में आओगे और ज्ञान हो जायगा। अनुभव प्राप्त कर लोगे। इसको पाने का सरल उपाय यह है कि निर्बन्ध का रूप बनाओ। मैं समझता हूँ कि मेरी स्पष्ट और सच्ची व्याख्या के पश्चात् किसी को ऊँट पटाँग बातें कहने का साहस

न होगा। अज्ञान की शिक्षा ने सारे संसार को नष्ट किया हुआ है।

रतन खान घट में जब खुलै। दुख दरिद्र और दुरमति टलै॥

रत्न खान क्या है? रत्नखान अनुभव है जिससे मेरे जैसों को प्रसन्नता, मस्ती, आनन्द मिलता है। यह उसी प्रकार है जिस प्रकार एक विद्यार्थी प्रश्न हल करके प्रसन्नता पाता है।

गुरु की वाणी अचल और अमर है। प्रकाश और शब्द अन्तर में है। चरण प्रकाश में टिकते हैं। जब तक यह उत्पन्न नहीं होता, सतसङ्ग करो। वृत्ति के विरोध से कार्य बनेगा। चिंता की आवश्यकता नहीं। और यदि कुछ भय की बात है तो वह यह है कि सतसङ्ग कराने वालों ने लोगों को ऐसे चक्कर में डाला हुआ है कि जिसकी सीमा नहीं। सतगुरु पर विश्वास से प्रेम, भक्ति और शान्ति मिलेगी। वह प्रत्येक स्थान पर है। अन्तर में भक्ति करो, बाह्य सतपुरुष का सतसङ्ग करो। वही घर में घर दिखला देगा जब समय आवेगा।

"बड़े भाग जिन सतगुरु पाये। चौरासी से तुरत हटाये॥"

चौरासी क्या है? यह मानवीय बोध भान है जिनमें मनुष्य भटकते रहते हैं। जब अपने रूप का पता लग जाता है तो चौरासी का चक्कर छूट जाता है। जिनका इस जीवन में नहीं छूटा उनको घबराने की आवश्यकता नहीं। विश्वास रक्खो जिसके साथ तुम प्रेम करते हो मरने पर तुम भी वहीं जाओगे जहाँ वह जायगा। कहा गया है जैसी आशा वैसी वासा।

ऐ संसार में महात्मा कहलाने वालो पहिले अपने आपको मुक्त करो तब दूसरों की मुक्ति दिला सकोगे अन्यथा यह चेले वहीं जायंगे जहां तुम मर कर पहुँचोगे। यह एक भेद की बात है जो बता रहा हूँ। अन्तमता सो गता। किसी के पास क्या परख है कि अमुक महात्मा पूर्ण है। कठिन बात है। मैं किसी के विषय में सम्मति नहीं दे सकता। मैं यह भी नहीं कहता कि मैं पूर्ण हूं। हां मैंने जीवन में सचाई से कार्य लिया है।

राम जब मरने लगे समस्त अयोध्या को साथ ले गये। इसका यह अर्थ नहीं कि समस्त अयोध्या वासी मर गये। वरन् यह कि उनको इनसे प्रेम था। इनकी दशा सुधर गई उनके साथ इन्हें भी ऊँची अवस्था प्राप्त हो गई। धन्यवाद है कि दातादयाल ने हमें इसी जीवन में मुक्त कर दिया।

जो वाणी में आया है वह सच है। जो रहस्य को समझ गया उसके पिछले विचार जो उसके संकट का कारण बन रहे हैं छूट जायगे। यही दुख का कटना है।

मेरे पास क्या है? गुरु। चिन्ता और शोक छोड़ो। यह भी बहुत है। अभ्यास बने या न बने क्या परवाह है। चिन्ता, फ़िक्र छोड़ने से तुम्हारा जीवन बदल जायगा। चूँकि विचार शुद्ध पवित्र होगा। स्वयं ही अन्तर में शान्ति और सुख आने लगेगा।

"राधास्वामी रक्षक जीव के, जीवन जाने भेद।
गुरु चरित्र जानें नहीं, रहैं करम के खेद॥"

गुरू तुम्हारे भीतर रहता है। उससे किसी रूप में भी सच्चा प्रेम करो कार्य बन जायगा। और अन्तर में स्वयम् रक्षा होती रहेगी। यदि बाह्य शान्त पूर्ण पुरुष मिल जाय तो बिना चिन्ता के शान्ति बाह्य सतसङ्ग से मिल जायगी और अनुभव हो जायगा।

"खेद मिटै गुरु दरस से और न कोइ उपाय।
सो दरसन जल्दी मिले बहुत कहा हम गाय॥"

अर्थ स्पष्ट है। वास्तविकता को समझो। सुखी और प्रसन्न रहो।

—०❀०—

ब्रह्माण्डों की सैर

(लेखक—परमदयाल फ़क़ीर साहब)

बाज़ आ, बाज़ आ ऐ हस्ती मेरी लिखने और कहने से अब।
बे फ़ायदा घिस घिस व बक बक से क्या पूरा होगा मक़सद॥

मित्रो ! प्रारम्भिक जीवन से जिस प्रकार के वाह्य प्रभाव मनुष्य के मन पर पड़ते रहते हैं उनके अनुसार जीवन में परिवर्तन आता रहता है। किन्तु उस परिवर्तन में मनुष्य की अपनी प्रकृति अथवा निज स्वभाव का भारी प्रभाव रहता है।

मेरे जीवन पर बचपन से हिन्दू धर्म के संस्कार पड़े। हिन्दू धर्म में अन्य बातों के अतिरिक्त जिनका सम्बन्ध मनुष्य की शारीरिक और मानसिक अवस्था को श्रेष्ठतर बना कर उसे आनन्द पूर्वक रहने का अवसर देना है, दो विचार विशेषतः प्रत्येक मनुष्य को मिलते हैं। प्रथम विचार ईश्वर प्राप्ति और दूसरा आवागमन से मुक्ति पाना है। वेदान्त की शिक्षा मनुष्य को ईश्वर दर्शन और आवागमन के भ्रम से ऊँची ले जाती है किन्तु वेदान्त की अन्तिम सीढ़ी तक केवल वह मनुष्य जा सकता है जिसके भीतर ईश्वर प्राप्ति और आवागमन से मुक्ति की सच्ची जिज्ञासा हो और साधन सम्पन्न जीवन की ओर जिसका ध्यान टिका रहे। जो मनुष्य इस इच्छा के बिना वेदान्त की चरम सीमा तक पहुँचने का प्रयत्न करता है, असफल रहता है अर्थात् वह वेदान्त के वास्तविक लक्ष्य और आत्मिक शान्ति को प्राप्त नहीं कर सकता और दूसरों के लिये मानसिक उलझन उत्पन्न करने का कारण होता है।

जीवन के निज अनुभव के पश्चात् कहने का साहस करता हूँ कि कोई मनुष्य उस समय तक मानसिक शान्ति अथवा ठहराव की अवस्था को प्राप्त नहीं करसकता जब तक कि उसकी मानसिक वृतियाँ स्थिरता को प्राप्त नहीं करतीं। यह एक सोलह आने सच्ची बात है। विचार की स्थिरता अथवा मानसिक वृत्तियाँ की स्थिरता के लिये मनुष्य विभिन्न उपायों का प्रयोग करता है यथा कर्म, भक्ति, ज्ञान और विचार योग आदि। विचारों की स्थिरता का दूसरा नाम ही समाधि है और यह अवस्था इन उक्त उपायों से ही प्राप्त हो सकती है; किन्तु स्मरण रहे। प्रत्येक मनुष्य को समाधि

की अवस्था से चाहे वह कर्म योग के द्वारा, भक्ति मार्ग द्वारा अथवा विचार योग से हो उत्थान होना आवश्यकीय कार्य है। कोई व्यक्ति प्रतिक्षण समाधि की अवस्था में नहीं रह सकता।

वेदान्ती विचार के बहुत से व्यक्ति कहते हैं कि मन और इन्द्रियाँ अपना अपना कार्य करती रहें हमारी क्या हानि है। कहने सुनने के लिये तो यह बात ठीक और मन को लुभाने वाली है। किन्तु वास्तविकता से कोसों दूर और बिना साधन-सम्पन्नता के है। अपने मन में विचार करो कि जब तक मनुष्य का वास्तविक अस्तित्व अथवा सुरत मन और इन्द्रियों के स्थान पर न आये तो वह किस प्रकार अपना कार्य कर सकती हैं। और जब मन और इन्द्रियों के कार्य में सुरत सम्मिलित है तो मनुष्य उनके प्रभाव से कैसे सुरक्षित रह सकता है, इस लिये वेदान्त अभ्यास का साधन है।

जो संस्कार मुझे जीवन में दातादयाल की परम पुनीत जात से मिले उनका स्वयम् अनुभव किया। सन्तों की वाणी में इस प्रकार के ब्रह्म पन की अवस्था जिसका मैंने ऊपर उल्लेख किया है खण्डन पाया जाता है किन्तु वह प्रायोगिक असली वेदान्त की ओर संकेत करते हैं। इस लिये अपने कर्म भोग के आधार पर निज अनुभव प्रकट करने के लिये विवश हूँ।

मेरे अनुभव में ब्रह्म केवल प्रकाश है। वह प्रकाश अनुभव नहीं बल्कि असली प्रकाश है। ख्याल का ब्रह्म और है विचार का ब्रह्म और है। असली ब्रह्म दोस्तो दोनों से अलग प्रकाश है। जिस तरह हम देखते हैं चांद और सूरज यहाँ। इसी तरह से घट के अन्दर ब्रह्म का प्रकाश है॥ ब्रह्म के अर्थ पर ध्यान दो। ब्रह्म दो शब्दों "विरह" और "मनन" से बना है। विरह का अर्थ बढ़ना और मनन का अर्थ सोचना है। मैं अनेक बार बता चुका हूं कि इस स्थूल जगत की रचना सूर्य, चाँद और तारागण की किरणों के कारण है।

है कि यह पृथ्वी किसी समय स्वयम् सूर्य का एक टुकड़ा थी। अब वही सूर्य स्वयम् पृथ्वी का रूप धारण करके आप अपना और तारागण का प्रकाश इस भूमि पर फैलाकर रचना करता रहता है। इसलिये इस स्थूल प्रकृति में कार्य करनेवाला यह प्रकाश भी बढ़ता और सोचता रहता है और एक प्रकार का ब्रह्म है। किन्तु यह प्रकाश जिससे सूर्य, चन्द्रमा, तारागण आदि बनते हैं वह सूक्ष्म प्रकृति का बनाने वाला और उस में रमन करने वाला है इसी प्रकार कारण प्रकृति के प्रकाश के विषय में भी समझ लो। इसलिये यह सब प्रकार का प्रकाश जो कारण, सूक्ष्म और स्थूल प्रकृति का आधार है ब्रह्म है। मेरी समझ अथवा अनुभव में इसके अतिरिक्त और कोई ब्रह्म नहीं है। इससे स्पष्ट है कि यह ब्रह्म या प्रकाश कहने सुनने का विषय नहीं है। अर्थात् ब्रह्म ब्रह्म कहने अथवा अपने आपको काल्पनिक रूप में ब्रह्म मान लेने से अभिप्राय सिद्ध न होगा वरन आवश्यकता इस बात की है कि मनुष्य स्वयम् प्रकाश रूप होकर असली जीवन में आये।

स्मरण रक्खो। स्थूल पदार्थ का प्रकाश विभिन्न रंग रखता है यथा, पीला, लाल, हरा, नीलगूँ और श्वेत। यद्यपि मूल और वास्तविक रङ्ग तो श्वेत ही होता है किन्तु उसमें विभिन्न प्रकार के पदार्थों के मिलने से अन्य रङ्ग दिखाई देते हैं। इसी प्रकार सूक्ष्म प्रकृति के प्रकाश में भी विभिन्न रङ्गों का सम्मिलन होता है उनका विवरण इस प्रकार है:—

(१) पीले रङ्ग का प्रकाश—इसमें मानसिक इच्छाओं का पदार्थ विद्यमान होता है। इसमें स्थिर रहने वाला सिद्धिशक्ति वाला और प्रबल संकल्प शक्ति का अधिकारी होता है।

(२) लाल रङ्ग—इसमें सूक्ष्म वासना विद्यमान् रहती है। इसमें स्थिर होने वाला विवेकी और विद्वान् होता है।

(३) चंद्र रंग का प्रकाश—इसमें स्थिर रहने वाला स्वयम्

आनन्द का उत्तराधिकारी होता है और अपने वचन से दूसरों को आनन्द देने वाला होता है।

(४) नीलगूरङ्ग का प्रकाश—इसमें ठहरने वाला अपनी जात पर भरोसा रखता है और पूजा पाठ के बाह्य आडम्बर और दासत्व के विचारों से उच्चत्तर रहता है।

(५) श्वेत रङ्ग का प्रकाश—इसमें ठहरने वाला आत्मिक शांति को प्राप्त करता है। वह श्रेष्ठतम पुरुष होता है और उसके दर्शन और स्पर्श से दूसरों को भी शान्ति प्राप्त होती है। यह वह पाँच स्थान हैं जिनका उल्लेख संतों की वाणी में बहुधा आता है साथ ही यह भी स्मरण रहे कि यह समस्त प्रकाश प्राकृतिक हैं। इस अनुभव के आधार पर ब्रह्माण्डों की सैर का अर्थ मेरी समझ में यह आया है कि मनुष्य प्रत्येक प्रकार शरीरिक के मानसिक बोधों में स्वतंत्र रह कर जीवन व्यतीत करे दूसरे शब्दों में हमारा अपने अन्तर में विभिन्न प्रकार के प्रकाश में ठहर कर विभिन्न प्रकार के आनन्द, मस्ती, प्रसन्नता, अनुभव, विवेक और ज्ञान के बोध, भान के साथ खेलना ही ब्रह्माण्डों की सैर कहलाती है यह मेरा निज अनुभव है दावा कोई नहीं यदि किसी महात्मा का अनुभव कुछ और हो तो वह प्रकट कर सकता है। चूँकि मेरे मस्तिष्क पर सन्त कबीर और राधास्वामी दयाल की वाणी के प्रभाव थे और अब भी हैं उनकी वाणी में स्थान स्थान पर बुद्धधर्म, इस्लाम धर्म, ईसाई धर्म, हिन्दू धर्म, अवतार पूजा आदि को काल मत प्रकट करके ब्रह्माण्डों को भी रक्खा गया है। मैं जानना चाहता था कि उनका मन्तव्य क्या है ? साथ ही सन् १९०४ में दाता दयाल ने परम पुनीत हुजूर राय सालिगराम साहब का पवित्र जीवन चरित्र मुझे पढ़ने को दिया। वह परम पुनीत जीवन पर्यन्त सचाई की खोज, अथक परिश्रम करते रहे, यद्यपि कहाँ वह और कहां मैं। किन्तु उन प्रभावों के कारण मैंने अपने जीवन में उनकी तड़प खोज और

कर्म का अनुकरण किया। खोज का परिणाम यह निकला कि जब तक कोई प्राणी किसी प्रकार के प्रकाश से सम्बन्ध रखता है वह उस प्रकाश से उत्पन्न होने वाले भाव बोध से बच नहीं सकता चूँकि मेरे अनुभव में ब्रह्म का अर्थ प्रकाश से है इसलिये प्रकाश या ब्रह्म के साथ माया अथवा भान, बोध का रहना भी आवश्यक है। इसलिये मानव अस्तित्व जब तक माया और ब्रह्म से ऊपर नहीं जाता वह आवागमन के चक्कर से नहीं बच सकता। इस लिये आवागमन से बचने के इच्छुक को प्रकाश, चाहे वह स्थूल हो अथवा सूक्ष्म या कारण हो, उससे उत्पन्न होने वाले भान बोध से निकलना आवश्यक है। और प्रकाश में ठहरकर उससे उत्पन्न होने वाले भान बोध के साथ खेलना ही ब्रह्माडों की सैर कहलाती है। अब दो प्रश्न उत्पन्न होते हैं। प्रथम यह कि प्रकाश और उससे उत्पन्न होने वाले भान बोध से निकलने का क्या उपाय है। और दूसरा यह कि क्या प्रकाश और उसके भान-बोध से प्रथक भी कोई वस्तु है? पहिले प्रश्न का उत्तर यह है कि प्रकाश और उसके भान-बोध से निकलने के लिये सच्ची तड़प और ऐसे पूर्ण पुरुष का सतसंग, हित और मत लेना आवश्यक है जो स्वयम् उनसे निकल चुका हो। दूसरे का उत्तर यह है कि प्रकाश और उससे उत्पन्न होने वाले भान-बोध से प्रथक वस्तु है। वह जो इनका आधार है जिसके सहारे इनका खेल होता है और जो साक्षी के रूप में इनके खेल का अनुभव करता है। उसका ज्ञान लेख अथवा व्याख्यान से प्राप्त नहीं हो सकता, वरन् मनुष्य को स्वयम अपने अन्तर में जाकर प्रत्येक प्रकार के प्रकाश और भानु बोध का अनुभव प्राप्त करते हुये उसकी खोज करनी होगी जो इन सबकी साक्षी है। किन्तु स्मरण रक्खो जब तक ब्रह्माण्डों की सैर से मन न भर जायगा उदासीनता न आयेगी, उसकी ओर ध्यान नहीं जायगा। दाता मुझे कहा करते थे "फ़क़ीर पहिले मैं

बुद्ध था और तुम उस समय मेरे चेले थे।" चूँकि मैं उस समय ब्रह्माण्डों की सैर से नहीं निकला था इस लिये इस कमी को पूरा करने के लिये वर्तमान् जीवन धारण करना पड़ा। अपने अनुभव के स्पष्ट करने के लिये शब्द नहीं मिल रहे हैं। हाँ! यह कह सकता हूँ कि अब मुझे उस रहस्य का पूरा ज्ञान या अनुभव होगया है जिसके अन्तर्गत संतों ने समस्त धर्मों को काल की सीमा के भीतर रक्खा है। जबतक मुझे इस रहस्य की समझ नहीं आई जीवन में संघर्ष बना रहा।

मानव स्वभाव नवीनता देखने का रहा है। वह सदैव एक ही दशा में रहना नहीं चाहता। शरीर बाल्यावस्था से युवा होता है और फिर वृद्ध होकर जीवन से उकता जाता है। और मृत्यु से आलिंगन करने का इच्छुक होता है। इसी प्रकार प्रत्येक प्रकार के जीवन या खेल से मनुष्य का उकताना उस दशा को छोड़ना और नई दशा का इच्छुक होना स्वाभाविक गुण है। बाह्य संसार की भाँति आन्तरिक संसार अथवा साधन की समस्याओं में भी समय आने पर उदासी आती रहती है और स्वभाव ऊँचा जाना चाहता है कि यह मेरी अनुभव की हुई बात है

बहुत अरसा अन्तर के प्रकाश आनंद में खेला था मैं।
दिल भरगया था इनसे अब रहना चाहता था अकेला मैं॥
स्थूल सूक्ष्म कारण प्रकृति के दायरे में बहुत रहा।
हस्ती चाहती थी कि कब निकले और कबतक रहूँ फँसा॥

अब सोचो जो वस्तु प्रकाश और ब्रह्म से परे है वह क्या है? आकाश का तत्व और उसका गुण शब्द। ऐसा शब्द जिसमें कोई दृश्य नहीं। दृश्य, द्रष्टा, दृश्यमान की त्रिपुटी नहीं केवल अस्तित्व है। और उसका प्राण शब्द। जबतक प्राण और स्वांस है, शरीर है, जबतक संकल्प, विकल्प है, मन है, और जबतक शब्द या नाम है सुरत है किन्तु जब समय आता है तो स्वभाव के अनुसार नाम

भी आनंद दायक नहीं रहते। यह मेरा निज अनुभव है। स्वामी जी ने कहा है "तीन छोड़ चौथा पद दीन्हा। सत्त नाम सदगुरु गत चीन्हा॥" भविष्य में क्या होगा क्या कहूँ।

सुरत भी हो जाय फ़ना और नाम को भी है फ़ना।
बाक़ी जोरहे वह है क्या अनुभव में नहीं है आता॥
जाप मरे अजपा मरे अनहद भी मर जाय।
सुरत समानी शब्द में ताहि काल नहिं खाय॥
जो समझा वह है यह कि बाक़ी रहे नाम अरंग।
संसार जैसा है वैसा रहे गुम हो जाय फ़क़ीरचन्द॥
न वहम आवागमन रहा नहीं खुदा न खुदा का खेल रहा।
दृष्टी सृष्टी का राज़ है यह इस राज़ से अब मेल रहा॥
संसार रहेगा और उसका खेल मगर हम न रहेंगे यहाँ।
बुलबुलये हस्ती हैं हम और तुम जितने भी हैं इन्सान यहाँ॥
ज्ञाते मालिक बेअन्त है बे पायाँ किनार समुद्र है।
उसमें कुल रचना रची और सब कुछ उसके अन्दर है॥
मिट गई तलाश अपनी खेल खेले दोस्तो।
सफ़रे ज़िंदगी का अनुभव कह चले हम दोस्तो॥
एहसाने मुरशिद सिर पर है जिसने दिया था सहारा॥
उस सहारे के आधार पर जीवन हमने है गुज़ारा॥

इसलिये निज अनुभव के आधारपर मैंने मनुष्यबनो की पुकार की है। मित्रो ! मनुष्य बनो। संसार यात्रा में समझ और विवेक से कार्य लो। दीवाने मत बनो। वर्तमान समय में जिसको कलियुग का नाम दिया जाता है शब्द और प्रकाशका सहारा लो। वर्तमान समय भौतिक विकाश की चरम सीमा है। भली प्रकार जी भर कर संसारकी सैर करो। चित्त को उभरने और खुल खेलने का अवसर दो। शब्द और प्रकाश और वर्तमान विज्ञान के आविष्कारों से मन को प्रसन्न करो किन्तु समझ बूझ के साथ।

जब बाह्य जगत से उपराम होने लगे तो अन्तर में प्रविष्ट होकर शब्द और प्रकाश से मानसिक और आत्मिक ज्ञान-बोध का आनंद और प्रसन्नता लो। मस्ती का अनुभव करो। जब इससे भी मन उकताजाय, अपने निज रूप में समाजाओ। फिर कहता हूँ यह दशा उससमय प्राप्त होगी जब बाह्य और आन्तरिक सैर से उपराम हो जायगा, पहिले नहीं। इस में समय लगता है। पर्याप्त अनुभव आवश्यक है:—

कलयुग में प्रकटे संत सारभेद बतलाने।
मेरे तेरे अज्ञान अँधेरा जीवों का मिटाने॥
संत नहीं कहते ब्रह्म बनो या जीव बनकर चिल्लाओ।
वह कहते हैं सुख से रहो और आनंद से जीवन गुज़ारो।
भूल भरम में तुम फँसे हम आये तुम्हें चिताने।
हमरी बतियाँ सुनलो दोस्तो मत बनो निपट अनजाने॥
हम तुम बुलबुलये हस्ती अहमभाव में भूले।
अज्ञान के कारण मैं मैं करते पावें दुखके रेले
राधास्वामी मत में आकर जो कुछ अनुभव में आया।
टूटे फूटे शब्दों का सहारा लेकर साफ़ साफ़ कह गाया॥
इन्सान बनो, इन्सान बनो, इन्सानबनो इन्सान।
बिन इन्सानियत ऐ मेरे मित्रो जीवों का नहीं कल्यान॥
हिन्दूपन में अहम् भाव है मुसलिम बनकर भूले।
कभी बुद्ध बने कभी जैनी बने और बनकर मन में फूले।
गुरू चेला ब्यौहार बना और सेवक स्वामी खेलअनोखा।
भगत बने भगवान बनाया यह सब मनका धोखा॥
चौथे पद में आओ प्यारे वही सारका सारा।
वही ख्याल दिया सतगुरु ने मुझको मैंने किया निरवारा॥
इन्सानबनो इन्सानबनो भाई भाई बन कर जीओ।
राज़ समझ कर जग में मित्रो मस्ती का सागर पीओ॥

प्रारम्भिक शिक्षा में नहीं देसकता। विवश हूं। हाँ मुझे आशा है कि पूज्य नंदूभाई हुजूर बाबा हरचरनसिंहजी, हुजूर महता साहब, हुजूर कृपाल सिंह जी, पीरे मुग़ाँ साहब और संत मत के अन्य आचार्य और महात्मा अपने अपने सतसंग में सतसंगियों के अधिकार को देख कर रोचकता और भयानकता के साथ संतों की शिक्षा का प्रचार करते हुये जीवों को वास्तविकता की ओर लेजावेंगे। किन्तु एक बात कहे देता हूँ:-

जीव हैं भोले भाले और दुखी उनको मत लूटना।
यह निबल अबल अज्ञानी हैं इनको गलेसे लगाना॥
तीन ताप के हैं मारे उनको हित देना।
सतवक्ता बनकर उनके भरम मिटाना॥
मानसिक शारीरिक ब्रह्मचर्य को नित पालें।
यह असली रोग है उनको यही जताना॥
द्रोह ईर्षा बुग्ज़ हसद और तास्सुब।
इनसे खुद बचना और औरों को बचाना॥
बेकार न रहना जबतक ज़िन्दगी है काम करना।
घर में प्रेम भाव रहे नित सार यह बताना॥
सुरत शब्द का साधन करना प्रकाश समाना।
सत संग से भ्रम मिटाना और खुश रहना॥
हँसते खेलते जीवन गुज़ारना और नहीं तपना।
सुरत के अन्तरी भाव से अपने नाम को जपना॥

इस संसार में नवीन समय लाने का प्रयत्न करना। कुछ समय पश्चात् यह शिक्षा शासन के अधिकार में जायगी और संतमत राजधर्म होगा। इस शिक्षा का प्रारम्भ भौतिक जगत में प्रायोगिक रूप में श्री नहरूजी ने किया है। प्रारम्भ हो चुका है।

परिणाम

राममिलन को निकला था मैं राममिलन अस होया।

ढूँढ़न वाला आप गुम हो रहा क्या क्या पाया ॥
ढूँढ़ अवस्था की जो हालतें सैर ब्रह्माण्ड कहावें ।
कर कर सैर खूब आनन्द लिये हैं अपने आपे माहीं ॥
लब खुले तब रचना कीनी, बन्द हुये तब प्रलय होई ।
उत्पत्ति प्रलय के पार दोस्तो इक परम तत्व रहाई ॥
वह क्या है ? मैं कह नहीं सकता, कहन सुनन से न्यारा ।
जो गया सो गूँगा बनगया, आया फेर न वारा ॥
दुनियाँ वालो सुनो, आप बीती सार सार बतलाऊँ ।
लब खुले और बंद हुये मैं यही भेद कह गाऊँ ॥
राधास्वामी तुम आपही हो, और किसे बतलाऊँ ।
जब तक बासी हूं इस देश का दाता के गुण गाऊँ ॥

'प्यारे भगवान सिंह !

तेरी दया ने बन्धन काटे अब मैं हूं आज़ाद हुआ ।
काम अपना सचाई से करदिया, और गुरु ऋण से आज़ाद हुआ ॥
ख्वाबे ज़िन्दगी इक ख्वाब था, ख्वाब से दिलभर गया ।
मस्त होकर अल मस्त होकर अपने आपे को हूँ खोगया ॥

—प्रेषक-भगवानसिंह शर्मा अध्यापक

नवीन वर्ष का आदेश

(ले० परमदयाल फ़क़ीर साहब)

इस संसार में प्रत्येक व्यक्ति अपना विचार, अपना अनुभव किसी आधार पर व्यक्त करता है साधारणतः मनुष्य का अपना निज-स्वार्थ परोक्ष रूप में निहित होता है । और कभी कभी मनुष्य ममत्व में आकर पक्षपात के अन्तर्गत बात कहता है और विशेषतः हम सुनी सुनाई बातों पर विश्वास रखकर अपने विचारों को व्यक्त करते हैं । दाता ने दया की कि मैं इन समस्त बातों से मुक्त हो गया ।

आप राधास्वामी सतसंग हनमकुंडा, दकन के सैक्रेटरी हैं। आप को संस्कार परम पुनीत दातादयाल की ज़ात से मिला है। मेरा भी सम्बन्ध उस परम पुनीत विभूति से हुआ। मैं उनकी शरण में केवल उस मालिक, परमतत्व, आधार अथवा राम के मिलने के जनून के सम्बन्ध में आया। मैंने उस पवित्र विभूति में अपने मालिक, राम अथवा परमतत्व को मानकर उस विभूति से प्रेम किया। आपने उस तत्व, मालिक, राम अथवा ज़ात से मिलने के लिये जो साधन और विधि बताई उस पर चलने से यह पाया कि मैं ही नहीं समस्त जीव जन्तु उस राम, मालिक अथवा ज़ात में ऐसे रहते हैं जैसे मछली पानी में रहती है।

जल बिन मीन पियासी। मोहि सुन सुन आवै हाँसी॥

इस खोज के क्रम में मैं अपने अतिस्त्व को इस प्रकार सूक्ष्म से सूक्ष्म वरन् अति सूक्ष्म पाता हूँ कि मेरे अस्तित्व के अतिरिक्त और कोई राम या मालिक मुझ से पृथक नहीं है।

सुरत हुई अतिकर मगनानी। पुरुष अनामी जाय समानी॥

सम्भव है मेरे मस्तिष्क की ख़राबी हो। किन्तु इस समय यह अवस्था है। यद्यपि अपने भ्रम, अज्ञान, बुद्धि के कारण मैं उसकी खोज करता रहा यह जुस्तजू न थी बल्कि तौहीने जुस्तजू थी। अब भी जब मेरा अस्तित्व सूक्ष्म, कारण और स्थूल प्रकृति में आता है तो खोज, आकर्षण उत्पन्न होता रहता है किन्तु वह तुरन्त ही फिर से खोज की अवस्था में चला जाता है दिन प्रति दिन स्थूलता और सूक्ष्म का विचार भाव कम होता जारहा है। अथवा यों समझो कि पानी से जब मछली का रूप धारण किया वह मछली पानी पीना चाहती है और जब तक पूर्ण रूप से अपनी स्थूलता और सूक्ष्मता खोकर फिर पानी नहीं बनती उसके व्यक्तित्व का खेल किसी न किसी रूप में विद्यमान रहता है चूँकि अभी इस शरीर, मन, और आत्मा के खेल का चक्कर रहता है मुझे बोध

होता है कि जिस प्रकार समुद्र के पानी से मछलियां आदि बनकर एक दूसरे को खाती रहती हैं उसी प्रकार इस संसार में मनुष्य उस तत्व, राम या मालिक से बन कर परस्पर एक दूसरे को अङ्ग सङ्ग करने का प्रयत्न करते रहते हैं और इस कर्म से हम सब सुख दुख उठाते रहते हैं। संतों ने इसलिए इस रचना के दो भाग नियत किये। एक दयाल देश और एक काल देश। इस काल देश में हमारे दुख सुख का कारण हमारी बुद्धि है। और इस बुद्धि के क्षेत्र का नाम माया देश रक्खा हुआ है। यदि मनुष्य की बुद्धि को ज्ञान, सच्ची समझ से स्वच्छ किया जाय तो हमारा अधिक सीमा तक भला हो सकता है इसीलिए समस्त शास्त्र, धर्म कहते हैं कि द्वेष, ईर्षा, कपट, छल, स्वार्थ को दूर करो। इसके स्थान पर प्रेम, मेल उत्पन्न करो। इसलिये मैंने यह व्रत लिया है कि 'मनुष्य बनो' इसलिये मेरा आदेश जीवन के अनुभव के आधार पर यह है कि जब तक हमारा अस्तित्व इस सीमित काल व माया देश में है हमको जीने का रहस्य जीओ और जीने दो का उपाय प्राप्त करना चाहिये और साथ साथ अपने आपको उस समुद्र जो हमारा आदि है अर्थात मालिक, ज़ात, परमतत्व अथवा आधार है उसमें लय होने का साधन आवश्यक है इसके लिये मेरी 'मानव धर्म प्रकाश' पुस्तक पढ़ें जो 'मनुष्य बनो' कार्यालय अलीगढ़ से मिल सकती है। इसे ध्यान पूर्वक पढ़ें। चूँकि इस अस्तित्व में कारण, सूक्ष्म, स्थूल, प्रकृति का मेल है और प्रकृति में सबसे पहला तत्व आकाश का है जिसका गुण शब्द है। इसलिये जो विधि, उपाय इस जीव रूपी मछली को अपने निज स्वरूप से मिला सकता है, केवल अनहद मार्ग है अथवा शब्द योग है। मैं इस मार्ग से अपने आपको अपार, अनन्त अथवा सच्चे राम या परम तत्व के रूप में होता रहता हूँ या आता रहता हूं।

छोड़ कर मसकन ज़मीं का लामकानी हो जाता हूं ।
देश तज कर द्वैत का आप लासानी हो जाता हूँ ॥
फ़र्दियत वहाँ जाती रही और कुल्लियत का भ्रम है ।
लामुहीत होकर बेनामो निशां होता रहता हूं ॥
है होश अपने जिस्मो मन का चूँकि मुझे ।
अपनी ख्वाहिश के ज़ेरे असर निज अनुभव कहता रहता हूं
बाद मिटाने हस्ती जिस्म दिल वह राम की दोस्तो ।
जो था पहले वही दोस्तो होता रहता हूँ ॥

वास्तविकता यह है कि वह परमतत्व स्वयम ही विभिन्न रूपों में मानवीय रूप बन कर खेलती है। मनुष्य की जात को प्रारम्भ, अन्त और मध्य अवस्था में है, किन्तु जन साधारण अपने भ्रम व अज्ञान से इस रहस्य को नहीं समझते। इसलिये मेरा संदेश इस नवीन वर्ष को यही है कि प्रत्येक सतसंग अपने क्षेत्र में गुरुमुखता के नियम पर च है।

आप हैदराबाद, दकन के क्षेत्रमें पूज्य दयाल स्वरूप नन्दूसिंह जी महाराज के सहज योग से गुरुमुखता के नियम को निभाओ।

गुरुमुख कोटिन जीव उबारे ।

अर्थात् गुरुमुख नाम का एक शिष्य करोड़ों जीवों को उबारता है उभारना या उबारना क्या है ? मनुष्य जीवन को भ्रम चिन्ता, अज्ञान आदि से मुक्त कराना है । वास्तविक नाम तो चौथा पद है किन्तु इस जगत में प्रत्येक प्राणी के लिये पृथक २ आदेश व संस्कार की आवश्यकता है। इसलिये जीवित गुरुमुख की आवश्यकता है इस माया देश में मानव जीवन पर दूसरों के विचार, भान, बोध तथा इच्छाओं का प्रभाव पड़ता रहता है और प्राणी को दुख सुख दिलाता रहता है और साथ ही अपने अज्ञान और भ्रम से प्राणी अपनी बुद्धि से सेखचिल्ली की भाँति ऊँट ... अपनी ही दशा की बुरी भली बनाता रहता

है। इसलिये गुरुमुखों का सतसंग रहे और ऐसे विचार लियें जावें जो आशावादी हों। संसारी व्यवहार के लिटे परस्पर सहानुभूति आवश्यकक है "गुरू और सतसंगी दोऊ मीत।"

अतः आप महानुभाव अपने सतसंग के क्षेत्र में मुट्ठी आटे के नियम को अपनाओ प्रत्येक घर प्रत्येक दिन एक मुट्ठी आटा प्रातः सायं काल अवश्य निकाले। इसलिये मनोवैज्ञानिक प्रभाव के सिद्धान्तों के अनुसार मुट्ठी आटा निकालने वाले को समृद्धि होगी। इस आटे के मूल्य से एक दूसरे निर्धन और निर्बल भाइयों की सहायता करना सीखो। सतसंगी विभिन्न प्रकारों से दुखी हैं। हाँ, यदि कोई अधिक सहायता करना चाहें तो करें। दाता का शब्द पढ़ो :—

देह धरा तो देय तू, कर्म धर्म सतज्ञान।
कर्म धर्म सत ज्ञान से, और का हो कल्यान ॥ १ ॥
देह धरा तो देय तू, अन्न द्रव्य का दान।
अन्न द्रव्य के दान से, तेरा हो कल्यान ॥ २ ॥
देह धरा तो देय तू, मुखसे मीठे बैन।
मुखके मीठे बैन से सब को हो सुखचैन ॥३॥
देह धरा तो देय तू, औरों को सनमान।
औरन के सनमान से, तुझे मिलेगा मान ॥४॥
देह धरा तो देयतू, सतगुरु का सतनाम।
सतगुरु के सतनाम से, पावेगा विश्राम ॥५॥
देह धरा तो देय तू, प्रेम, प्रीत परतीत।
प्रेम प्रीत परतीत से, होगा तेरा हीत ॥६॥
देह धरा तो देय तू, विद्या, बुद्धि, बिचार।
विद्या बुद्धि बिचार से, हो सच्चा उपकार ॥७॥
देह धरा तो सेव कर, सेवक का यह धर्म।
सेवा कर गुरु देव की, समझ भक्ति का मर्म ॥८॥

देह धरा अच्छा भया, देय देय अब देय।
धन दे मन दे देह दे, असरन को दे गेह ॥९॥
देह धरा अच्छा भया, जी औरों के हेत।
औरों का उपकार है, भव तरने का सेत ॥१०॥
देह धरा तो देय अब, जब लग तेरी देह।
देय देह दे देह दे, देह नेह अरु गेह ॥१२॥
देह धरा तो देय तू, तन मन निजमन देह।
देह खेह हो जायगी, फिर कौन कहेगा देय ॥११॥
जीना मरना एक है, दोनों एक समान।
नर की देही जब मिली करसबका कल्यान ॥१३॥
नदी न हे नहिं आपको, फल नहिं खावे पेड़।
जो नर ऐसा नहीं है, उसे काल का एड़ ॥ १४ ॥
मर जाऊँ माँगू नहीं, अपने तन के काज।
परमारथ के कारने, मोहिन आवै लाज ॥ १५ ॥
सन्तन का मत है यही, देय देय कुछ देय।
जो नहिं देगा देह को, देह अन्त में खेह ॥ १६ ॥
लेना हो सत नाम ले, देना दे अन दान।
लेनेदेने को समझ, यह सिद्धान्त महान ॥ १७ ॥
जो देगा लेगा वही, समझ गुरु की बात।
जो देने वाला नहीं, सहैगा जम की घात ॥ १८ ॥
अपने लिये न जी कभी, यह गुरु का उपदेश।
जी तू औरों के लिये, यह है सत संदेश ॥ १९ ॥
मरा जो औरों के लिये, वह जीवित है नर।
जिआ जो अपने देह को, वह है कूकर खर ॥ २० ॥
सेवक सेवा करै नित, सेवा गुरु की रीत।
सेवा के परताप से, लेगा काल को जीत ॥ २१ ॥
काल कर्म को जीत कर, चल सतगुरु के धाम।

धुर पद, सतपद पहुँच कर ले सच्चा विश्राम ॥ २२ ॥
लेना हो सो जल्द ले, कही सुनी मत मान।
लेना दान का रूप है, गुरू बानी परनाम ॥ २३ ॥

सत संगियों का यह दान सतसंगियों के काम आवे।

गुरूनहीं भूखा तेरे धनका। गुरू पै धन है नाम रतन का॥
पर तेरा उपकार करावें, भूखे नंगे को दिलवावें॥

जो देता नहीं, लेता भी नहीं। पिछला समय और था अब और है। इसलिये निस्संकोच पंथ, सम्प्रदाय, समाज का विचार रखते हुये एक दूसरे की सेवा करो। नाम जपो, दण्ड छको।

काम करो, काम करो, काम करो जिससे दूसरों का उपकार हो

अब औटो डैमो क्रेसी का समय आने वाला है। स्व सम्मान, स्वानुशासन, स्वाधिकार, स्व-सहायता, निज-विश्वास का समय आने वाला है। दूसरों को इसी नियम पर लाओ यही आदेश है।

प्रेषक—सैक्रेटरी, राधास्वामी सतसंग, हनम कुण्डा (दकन)

धार्मिक, साम्प्रदायिक और प्रान्तीय पक्षपात आदि

(ले० परमदयाल फ़क़ीर साहब)

पंजाब में पंजाबी सूबा और महा पंजाब की सदा गूंज रही।
पुर अमन जो रहना चाहते हैं उनके दिल में हरकत आ रही॥
खारजी असरात मेरे दिलो दिमाग़ को हैं हिला रहे।
इसलिए क़लम की जुबान है हरकत में आरही॥

श्री नहरू व अन्य भारत के रहने वाले महापुरुष भारत को संगठित तथा शक्तिशाली रखने के विभिन्न उपाय और विधियां सोचते हैं। अपनी अपनी ओर से समस्त सचाई पर हैं किन्तु सिद्धान्त से अनभिज्ञ हैं। पढ़ने वाले को अधिकार है कि वह

मुझ से पूछे कि वह कौन सा सिद्धान्त है जिससे कि यह सब के सब अपरिचित हैं। वह सिद्धान्त है स्वभाव का नियम।

न जनसंघी है मुजरिम न सिख न हिंदू न अकाली।
राजे कुदरत के भेद से हैं सब खाली के खाली॥

सुनो मित्रो! एक दीवाने की बात। मैं तो दीवाना नहीं किन्तु आप महानुभाव दीवाना समझेंगे। क्योंकि अब सब मेरी समझ में दीवाने हैं और दीवानों में रहने वाला दीवाना कहलाता है। इसलिए मैंने अपने आपको दीवाना कहा है।

इस भारतवर्ष में भक्ति, पूजा-पाठ का, भजन का संस्कार जन्म जन्मान्तरों से मानव जाति को मिला हुआ है। जो संस्कार जन्म जन्मान्तरों से मिला हुआ चला आरहा है। वह कैसे निकल सकता है। संगत का फल अवश्य मिलता है। यदि किसी विशेष भाव या लोभ के अन्तर्गत किसी एक प्रकार की भक्ति, भजन, पूजा-पाठ को बदला गया तो मानवीय स्वभाव किसी अन्य प्रकार की भक्ति, पूजा-पाठ और भजन की ओर आकर्षित होगा, संभव है आप उस मन्तव्य को जो मैं भक्ति, पूजा-पाठ और भजन के शब्दों से प्रकट कर रहा हूं न समझें, इसलिए इसकी व्याख्या करता हूँ। मानवीय हृदय का विश्वास द्वारा स्वाभाविक प्रेम किसी मनुष्य, वस्तु अथवा इष्ट से होना भक्ति, या पूजा-पाठ कहलाता है। इसी में मातृ भक्ति, देश भक्ति, ईश्वर भक्ति, गुरु भक्ति, आदि सम्मिलित हैं। चूँकि यह सब प्रकार की स्वाभाविक भक्तियां और पूजा-पाठ अज्ञानवश होती हैं उनका परिणाम सदैव लाभदायक नहीं होता। इस लाभदायक से मन्तव्य शान्ति और सौख्य से है। हां अज्ञान की भक्ति के परिणाम स्वरूप त्याग के कारण मान, प्रतिष्ठा, धन, धान्य अवश्य मिलता है और साथ ही उस अज्ञान का आनन्द और प्रसन्नता भी मिलती है किन्तु शांति सौख्य और चैन न मिलेगा और न जीवन का लक्ष्य ही प्राप्त होगा।

प्रत्येक वस्तु की सीमा होती है। इस अज्ञान की विभिन्न परिस्थितियों की पूजा, भक्ति आदि से लाभ, आनंद भी मिला किन्तु उसके साथ दूसरों की हानि भी हुई; यथा, धार्मिक संग्राम अथवा धर्म की लड़ाई, चाहे वह किसी जाति धर्म ने की और अनेक बलिदान हुये, अपना नाम छोड़ गये किन्तु उसके साथ दूसरों को उनके इस कर्म से हानि भी हुई।

अज्ञान की भक्ति से अनेक प्रकार के साधुओं ने अपने शरीर सुखालिये, मुक्ति हेतु काशी में करवट ली आदि आदि। राजहट के धर्म ने राजपूतों के जीवन को नष्ट किया।

संसार में प्रत्येक वस्तु के दो पहलू हैं। यदि काँग्रेस ने अँगरेजों को निकाला तो जो रक्तपात विभाजन के समय हुआ वह भी कम नहीं था। मैं यह नहीं कहता कि जो कुछ हुआ वह ग़लत था, न यह कहता हूँ कि ठीक था। मेरा भाव इस समय यह है कि जितने वर्तमान धार्मिक दंगल, पक्ष, और राजनैतिक पार्टियाँ हैं यह सब अज्ञान का आदर्श रखकर कार्य कर रही हैं। इसका परिणाम अच्छा भी और बुरा भी सब को भुगतने पड़ेंगे जन साधारण इस अज्ञान की भक्ति, पूजा-पाठ करने के लिये विवश है। केवल विशेष विशेष विभूतियाँ होती हैं जो इस रहस्य से परिचित होती हैं। देश के दृष्टिकोण से वह महानात्मा जो अज्ञान की भक्ति अथवा आदर्श नहीं रखता है, केवल श्री नहरू हैं अथवा कोई अन्य भी होंगे जिनको मैं नहीं जानता। धार्मिक दृष्टिकोण से वह अस्तित्व जो अज्ञान की भक्ति नहीं करता वह केवल कोई पूर्ण पुरुष, परम संत अथवा महर्षि होगा।

धार्मिक अज्ञान की भक्ति पूजा और पाठ को दूर करने के लिये कलयुग में सन्त कबीर गुरू नानक और राधास्वामी दयाल प्रकट हुये जो उच्च स्वर से प्रत्येक प्रकार की भक्ति, पूजा-पाठ को त्याग देने की सम्मति दे गये। और केवल पूर्ण पुरुष की भक्ति

अर्थात् उसके आदेश को समझ कर मानने का संकेत कर गये। किंतु खेद कि उनके अनुयाइयों ने इस रहस्य को नहीं समझा। वह डेरे, क्षेत्र और मान, प्रतिष्ठा, बड़ाई के जाल में फँसगये। और जीवों को अपने जाल में बुरी भाँति फँसाया, जिससे कि उनका अपना अभिप्राय सिद्ध हो जाय।

राजनीतिक दृष्टि कोण से श्री गांधी व श्री नेहरू जी प्रकट हुये। किंतु खेद कि उनकी बात को भी इन पार्टियों ने नहीं समझा वह भी कांग्रेस पार्टी के जाल में फँसे। इस अज्ञान के भावावेश के कारण जो प्रत्येक मनुष्य कर्म करता है उसके लिये वह विवश है, क्योंकि भावावेश होना मनुष्य की प्रकृति में है और मनुष्य अपने भावावेश का दास बन जाता है।

जज्बये गुलामी भला कैसे जायगा!
इन्सान फ़ितरती तौर से जज्बे में आयेगा॥
किसी को कोई जज्बा किसी को कोई आयेगा।
इसलिये इन्सान शांति और सुख न पायगा॥

अब मैं अपने आप से प्रश्न करता हूं कि इस दशा में सुख शान्ति असम्भव दिखाई दे रही है। सम्भवतः इसी लिए पूर्ण पुरुषों ने इस जगत को भव सागर काल और माया का चक्र मान-कर अपने अन्तर उपरामता को उत्पन्न किया कि मनुष्य शान्ति मय और सुख पूर्वक रह सके और वह भी तब होता है जब गुरु की दया हो। गुरु की दया क्या है?

अपने वचन द्वारा रहस्य भेद या सचाई का अनुभव करा देना अथवा जिनको वह रहस्य समझ में न आवे उनको अनुभव द्वारा निश्चय की अवस्था उत्पन्न करा देना। किन्तु ऐसे गुरू जिनकी नीयत साफ़ हो बहुत कम होते हैं। वह गुरुआई जीवों की शान्ति व सुख के लिये नहीं करते, वरन् अपने निज मान, प्रतिष्ठा, धन सम्पत्ति, धाम, अथवा डेरे के लिये करते हैं और यही कारण है कि धार्मिक जगत वाले अति दुखी और अशान्त हैं।

इसी प्रकार राजनैतिक क्षेत्र में जो व्यक्ति भी शान्ति और सुख लाना चाहता है उसको जन साधारण को यह दृष्यांकित करा देना आवश्यक है कि शान्ति व सौख्य के लिये जो उपाय तथा विधियां वह बताता है वह कहाँ तक ठीक हो सकती हैं और उसका अनुभव जनसाधारण को करा दे। चूँकि वह ऐसा नहीं करते इसलिये जनता में शासन की ओर से संतोष नहीं होता। हो कैसे! वह तो, मिनिस्टर, एम०एल०ए० आदि अपने निज स्वार्थ के लिये बनते हैं। सोचो।

इस समय आत्मिक व मानसिक शान्ति नहीं है जिसका प्रमाण हमारे घरों के जीवन हैं। मानसिक व आत्मिक शान्ति वाले मनुष्य के घर में प्रेम और घरेलू शान्ति होना आवश्यक है। जो स्वयम् शान्त है, जो स्वयम प्रेमका रूप है, उसके इर्द गिर्द प्रेम और शान्ति का मंडल बन जाता है। जहाँ धार्मिक जगतवालों में द्वेष, ईर्षा घृणा पक्षपात विद्यमान है वहाँ मानसिक अथवा आत्मिक शान्ति कहाँ रह सकती है।

कल मैं जालन्धर गया था। वहाँ कुछ मित्रों ने अपने यहाँ स्थान की कमी के कारण वश व्यास के सतसंग कराने का प्रयत्न किया। किन्तु मित्रों ने मुझ से कहा कि व्यास के मंत्री महोदय ने कहा है कि सतसंग घर में केवल व्यासवाले हीसतसंग करा सकते हैं। सुनकर चकित हुआ। क्या हुजूर साँवलेशाह की यही शिक्षा थी? ऐसे विचारवाले प्राणियों से यह आशा रखना कि उनका पंथ मनुष्यों को शान्ति दे सकेगा मेरी समझ में नहीं आता। ऐसेही अन्य धार्मिक क्षेत्रों को समझलो। धर्म प्रेम, प्रीति, शान्ति, सहयोग तथा संगठन सिखाता है। इसीप्रकार वर्तमान काँग्रेसपार्टी असफल हो रही है। उनके व्यक्ति अपने असली जीवन से अपने सिद्धान्त की पुष्टि नहीं करते। जब यह स्वयम् पार्टीबंदी के अन्तर्गत हैं त... से सम्भव हो सकता है कि ...

त्याग देंगे क्योंकि भावावेश का प्रेम अज्ञान का प्रेम सब में विद्यमान है और अज्ञान की टेक अपने और दूसरों के लिए हानिप्रद सिद्ध होती है।

२७-४-५६ के ट्रिब्यून के एक आर्टीकिल में श्री नेहरू ने अपने वक्तव्य में खेद के साथ कहा है कि यदि हिंसा को न त्यागा गया तो और अधिक हिंसक उत्पन्न हो जायंगे। मेरी तुच्छ बुद्धी में जो आया है वह यह है कि जनता में प्रकृति के नियम को फैलायाजाय और वह साधन से सप्रमाण हो कि हम जैसा सोचेंगे वैसाही बनेंगे। जैसा ख्याल, वैसा हाल। जैसी करनी, वैसी भरनी। जैसी मति, वैसी गति। कैसा अच्छा होता यदि देश के नेता इस ओर ध्यान देते।

मैंने निज अनुभव के आधार पर सिरदर्दी लेकर इसीलिये मनुष्य बनो की पुकार उठई जिससे जन-साधारण को संकल्प के संसार के प्रभाव और परिणाम का ज्ञान हो जाय। जबतक मूलकारण को नहीं बदलाजाता, मनुष्य जीवन का सुधार असम्भव प्रतीत होता है। वास्तविक मूल संकल्प है। इसलिये शिव संकल्पमस्तु के नियम को इस त्रिगुणात्मक जगत में अपनाया जाय। कभी कभी वाह्य प्रभावों से प्रभावित हो कर चाहता हूँ कि शेष जीवन में उठूँ और कार्य कर जाऊँ, किन्तु साहस नहीं होता है। यह संसार कुत्ते की पूँछ है, न कभी सीधी हुई और न होगी। मौज स्वयम प्रबन्ध करेगी।

मरने दे संसार को बेफ़ायदा क्यों बकता है।
लातों का जो भूत है बातों को कब सुनता है॥

किन्तु कर्तव्य पालन के अन्तर्गत कहता हूँ :-

सुनो मज़हब मिल्लत पंथ वालो, सोच समझ कर चलो।
अज्ञान अँधेरा दूर करो, और सतपुरुषों की बानी गुनो॥
जो कुछ मिलेगा किसी को, वह उसका अपनाही कर्म है।

अपने कर्म को शुद्ध करलो यही असली मर्म है ॥
किसी महरमे इसरार के सतसंग से रास्ता होगा सहल ।
यही गुरू भक्ती का राज़ है, कह रहा हूँ होकर बाअमल ।
ऐ जन संघियो, अकालियो महा पंजाब के हामियो ।
काँग्रेस वालो होश करो, इन्सानी ज़ाती को सँभालियो ॥
अज्ञान बश बोज नफ़रत द्वेश का न बीजना ।
वरना कर्म का फल अटल है पड़ेगा सब को भुगतना ॥
बाज़ारों में आकर के तुम शोरोगुल क्यों मचाते हो ।
अमली जीवन में आओ, फिसाद क्यों कराते हो ॥
मैं जानता हूँ तुम न मानोगे करलो कुछ दिन बहार ।
आयगा एक वक्त ऐसा तोड़ेगा सबका अहंकार ॥
प्रेम से मानो बनो इन्सान है अच्छी बात ।
नहीं तो काल कर्म का कर्ज़ा मित्रो ! मचावेगा उत्पात ॥
हमरे जुम्मे काम बख्शा था मुर्शिद ने कर दिया ।
करके चले हम देश अपने जो हैं सब की इब्तदा ॥
लेना नहीं कुछ हमको किसी से, न कोई रिश्ता यहाँ ।
संसार सागर में आये थे देखने सारा जहाँ ॥

इसी जीवन के तजुर्बे ने जो अनुभव कराया उसके आधार पर कह रहा हूं ।

फ़िरक़ा परस्ती, मजहब परस्ती, सूबा परस्ती है फ़जूल ।
ग़लत परिस्तिश से न पायगा नर शान्ती और सकून ॥
गुरू ज्ञान का रूप है उसकी शरण में आओ ।
विवेक, अनुभव को सङ्ग लेकर खुशी से जीवन बिताओ ॥
दयाल दाता ने दया की राज़े ज़िन्दगी है मिलगया ।
उससे हाँ अलमस्त होकर मज़मून यह है लिख दिया ॥

बैसाखी नवीन वर्ष

(ले० परमदयाल पं० फ़क़ीरचन्द जी महाराज)

पता नहीं कि पूर्वजों ने महीनों के नाम नियत करते समय क्या विचार दृष्टि में रक्खा था। प्रत्यक्ष रूप से प्रत्येक नाम के भीतर कोई न कोई रहस्य मानवीय विचार की धार को संचालित करता दिखाई देता है। आज बैसाखी है। पुराना वर्ष समाप्त होता है और नवीन वर्ष आरम्भ होता है। बैसाख दो शब्दों बे+साख से बना है। बे का अर्थ है बिना अथवा टूटना और साख का अर्थ है सम्बन्ध। प्रकृति में टूटना और जुड़ना दोनों बातें साथ साथ चलती हैं। जहाँ पृथ्वी अपने पुराने चक्र को पूरा करके छोड़ती है वहां नये चक्र से सम्बन्ध जोड़ती है।

आज से ६ वर्ष पूर्व हमारे देश ने विदेशी सत्ता का जुआ अपने कन्धे से उतारा और अपने शासन की बागडोर सँभाली। नया समय आरम्भ हुआ। अपने साथ नवीन जीवन और नवीन उमँगें लाया और पूर्ण पुरुषों की शिक्षा के प्रचारक एक साधारण सिपाही और शान्ति के देवता की पुकार संसार के कानों में गूँज उठी। यदि मानवीय जगत में शान्ति, सुख प्रसन्नता तथा सम्पन्नता स्वीकार है वर्तमान के निरीह बालकों के भविष्य को शानदार और प्रकाशमय बनाना है, संसार को आपत्ति और संकटों से बचाना है तो जीओ और जीने दो के नियम को अपनाओ। प्रांतीय, जातीय, देशीय, रंग और रूप के भेद भाव को त्यागो। भाई चारे और मेल जोल से काम लो। पंथ और सम्प्रदाय तथा धर्म के अहंभाव से ऊपर उठकर मनुष्य को मनुष्य की दृष्टि से देखो जिससे कि आर्थिक और सामाजिक जीवन श्रेष्ठतर बन सके। उसका विचार सराहनीय और स्वीकार करने योग्य है। उसने यह पुकार क्यों की ? उसके मस्तिष्क पर सन्तों

और पूर्ण पुरुषों के विचार प्रभावित हैं। और उसके अस्तित्व को उत्पन्न करने वाली शांति दायक मानवीय जगत की इच्छायें हैं। हो सकता है कि मेरी बात को सुनकर आप महानुभाव मुझे दीवाना कहें किन्तु यह बात है नहीं और यह पुकार भी जो इस साधारण सिपाई ने दी है नवीन नहीं है। माँगो, और दिया जायगा के प्राकृतिक नियम के अनुसार जब जब मानवीय जगत में अशान्ति और बैचेनी का चक्र चलता है मानवीय जीवन का संघर्ष बढ़ जाता है। हा हा कार होने लगता है। कोई न कोई ऐसी महानात्मा प्रकट होती है जो घाव पर मरहम का कार्य देती है सयय और देश काल वस्तु अनुसार यही पुकार सत कबीर ने उठाई, नानक पीर ने दी और उपनिषदों के ऋषि दे गए और इसी को वर्तमान समय के पूर्ण पुरुष ने दिया है। और उन्हीं के विचारों के अंतर्गत वह सामान्य सिपाही दे रहा है। स्मरण रहे कि प्रत्येक पुकार या विचार में कोई न कोई इच्छा होती है। सोचो वह इच्छा क्या है! सुख, शांति, चैन सम्पन्नता भी है। किंतु स्मरण रहे कि उसकी पुकार केवल शारीरिक जीवन तक ही सीमित है पूर्ण पुरुषों की पुकार जीवन के प्रत्येक पहलू की भलाई के लिए होती है। 'नानक तेरे भाने सर्वत का भला'। किंतु यह इच्छा कैसे पूर्ण हो सकती है? यह जानने के लिए वर्तमान समय के पूर्ण पुरुष की वाणी सुनो:—

बैसाख महीना सिर पर आया। साख गई जीव हुआ पराया॥
काल पक्ष सब जीवन धारी। पुरुष दयाल की सुध बिसारी॥
सुरत देश अपना विसराना। काल देश इन अपना जाना॥
काल रची त्रिलोकी सारी। दयाल रचा सतलोक संभारी॥
तीन लोक काल का थाना। चौथा लोक दयाल स्थाना॥
काल दिया जीवन को धोका। चौथे पद से सबको रोका॥
दयाल पुरुष का भेद न दीना। कर्म कान्ड में जीव अधीना॥

अपनी पूजा सब विधि गाई। जीव चले चौरासी भाई ॥
त्रिगुन रसरी जीव बँधाना। ब्रह्मा विष्णु महेश पुजाना ॥
देवी देवा पत्थर पानी। पाप पुन्य में जीव उरझानी ॥
काल धरे जग दस औतारा। कला दिखाय जीव धरि मारा ॥
आपही राम आप हुआ रावन। आप ही कन्स आप जसुनन्दन ॥
आप ही बलि और आपही बावन। आपही कच्छ मच्छ धर धारन ॥
परसुराम और नरसिंह देख। प्रहलाद भक्त हो बाँधी टेक ॥
खंभ फाड़ बाहर हो निकला। रक्षक कला दिखाई सकला ॥
चांद सूर और गौर गनेसा। पुजवाये और राहू हो गरसा ॥

मित्रो ! एक समय था जब मैं इस वाणी को पढ़ कर दीवाना हो जाता था। ब्राह्मण कुल में उत्पन्न होने के कारण रामायण, महाभारत शास्त्रों और पुराणों के संस्कारों की ग़लत समझ के कारण जीवन संघर्ष और उलझन में रहता था। इस वाणी का सारभाव मेरी समझ में न आता था। दाता दयाल महर्षि जी महाराज की परम पुनीत विभूति ने जीवन को अनुभव की सीढ़ियों से गुज़ारते हुये निर्द्वन्द्व अवस्था में पहुँचा दिया। साक्षात्कार होगया।

सुनो ! जीव अपनी साख अथवा वास्तविक भन्डार से पृथक होकर बेसाख हो गया। किस प्रकार ? तुम अपने पिता के मस्तिष्क में उसके अस्तित्व के एक छोटे से छोटे कीटाणु थे। पिता की इच्छा और वासना से बाहर आए। उस समय से तुमने अपना पृथक जगत बनाया हुआ है। अपनी बारी पर फिर तुम अपने भीतर से एक कीटाणु को निकाल देते हो। और वह अपनी रचना करने लगता है। यह समझाने के लिये एक उदाहरण है। अब सोचो मन क्या है ? संकल्प शक्ति है और इसी संकल्प शक्ति का नाम जीव है। संकल्प की उत्पत्ति कैसे होती है ? उसी प्रकार जिस प्रकार जीव और जन्तु उत्पन्न होते हैं। सूर्य, चन्द्र

और अन्य तारा गणों के प्रकाश और ताप का इस स्थूल पदार्थ में प्रवेश करते रहने से संसार बनता रहता है। और बनस्पति, पशु, जीव-जन्तु और मनुष्य उत्पन्न होते रहते हैं। इसी प्रकार एक ऐसा महान् प्रकाश का समुद्र है जिससे यह सूर्य, चन्द्र, तारा-गण और सृष्टि उत्पन्न होते रहते हैं और समय आने पर उसी में लय होते रहते हैं। तुम प्रश्न करोगे कि इसका प्रमाण क्या है ? मैं इसका प्रमाण अपने निज अनुभव से दे सकता हूँ। जिस समय मैं मन के समस्त संकल्पों को छोड़ देता हूँ तो मेरा जीव पना समाप्त हो जाता है। उस समय मेरा अस्तित्व एक असीम प्रकाश के समुद्र का होता है जहां न फ़क़ीरचन्द रहता है, न फ़क़ीर चन्द के बोध-भान। इसलिये शब्द में कहा गया है कि हम अपने उस प्रकाश रूपी समुद्र से पृथक होकरभान-बोध के जगत में आ गये। स्मरण रक्खो ! प्रत्येक प्रकार के बोध-भान उस समय उत्पन्न होते हैं। जब वह महान प्रकाश स्थूल सूक्ष्म अथवा कारण प्रकृति में प्रविष्ट होता है। इन बोध-भान का नाम ही मन अथवा जीवपना है। जिस प्रकार के भाव और विचार हमारे मन में उत्पन्न होते रहते हैं उसी प्रकार के दृश्य हमारी दृष्टि के सम्मुख आते रहते हैं और हम अपने अज्ञान के अंतर्गत अपने ही विचारों और भावों के पीछे लगकर जीवन का खेल खेलते और दुख सुख के भागी बनते रहते हैं। इस खेल में नाना प्रकार के बन्धन अपने लिए उत्पन्न करके उनसे बँध जाते हैं। मित्रो ! वास्तविकता यह है कि बोध-भान के जगत में हमारा प्रीतम, कर्म, भक्ति, ज्ञान योग और विचार सब हमारे अपने बोध-भान का खेल है। जिस प्रकार हम अपने भीतर बोध-भान उत्पन्न करके उनसे खेलते हुए अपने जगत की रचना करते हैं उसी प्रकार उस महान् प्रकाश से एक किरण अथवा धार निकली। उसने अपना ताना बाना तना और उसी ताने से अनेक ताने निकले और रचना का खेल अथवा

संसार प्रकट हो गया, अथवा जिस प्रकार मनुष्य के भीतर से उसकी शक्ति की एक बूँद आई या दूसरा आदमी बना । अपनी बारी पर उससे और आदमी बना और मानवीय जगत की सृष्टि बन गई । इसी प्रकार एक जीवन से अनेक जीवन बनते रहते हैं । मनुष्य के विचार भाव शक्तिशाली बन बनकर उसे जिस प्रकार खेल खिलाते हैं, इस रहस्य को मैं "निष्कलंक अवतार" नामक पुस्तक में लिख चुका हूँ !

संसार के भीतर जिस भाँति धर्म, पूजन विधि और कर्म, कांड के क्रम दृष्टि गोचर होते हैं सब मानवीय विचार और मन की उत्पत्ति हैं । प्रत्येक व्यक्ति को जो कुछ मिलता है सब उसके अपने और दूसरों के विचारों, भान-बोध का परिणाम होता है । प्रह्लादभक्त, के विश्वास ने खम्भ से विष्णु भगवान को नृसिंह के रूप में उत्पन्नकिया धन्ना भक्त को पत्थर की मूर्ति में जो दर्शनमिला वह उसके अपने विश्वास का ही परिणाम था । जिस प्रकार हमारी निज स्वांस बाहर की वायु से सम्बन्धित होती है । उसी प्रकार हमारा निज-संकल्प अथवा वासना या इच्छा भी बाह्य वासना, इच्छा के भण्डार के साथ सम्बन्धित होती है । इस वाह्य वासना या इच्छा के भण्डार का नाम ब्रह्माण्डी मन है । हम जो अपने विचार और संकल्प से अपना पृथक पृथक संसार बनाते हैं उसमें ब्रह्माण्डी मन प्रभावित रहता है और जिस प्रकार हम पिता के मस्तिष्क में मछली के रूप और माता के पेट में कछवे का रूप, और उत्पति के समय बाराह के रूप में बाहर अगर आते हैं, नर बन कर बापू के सिर पर खेलते हैं फिर परशुराम के रूप में मनोवेगों से युद्ध करते हुये शान्तिपूर्वक और प्रसन्न रहने के लिये मर्यादा अर्थात् नियम या धर्म के सिद्धान्त बनाते हैं । इसके पश्चात वानप्रस्थी बनकर अर्थात् विचारों की काट छाँट करते हुये अपने आप को परिस्थितियों के अनुकूल बनाते रहते हैं और फिर

मस्तिष्क में स्थिर होकर आत्म चिन्तन करते हुये शरीर त्यागदेते हैं। नितान्त इसी प्रकार ब्रह्मांडी मन भी नाना भाँति के अवतार धारण करता हुआ अन्तमें नाश को प्राप्त होकर अपने प्रकाश रूप में, जहाँ से वह निकला था, समा जाता है। यदि जनसाधारण को यह रहस्य मिलजाय तो धार्मिक जनून, पक्षपात, सांप्रदायिकता, घरेलू और देशज झगड़े, जो हमारी आपत्ति का कारण बने हुये हैं एक दम समाप्त हो सकते हैं।

मित्रो ! लाख प्रयत्न करो जबतक जनसाधारण का अज्ञान दूर न होगा श्री नहरू जी की यह इच्छा है कि देश में एकता हो किसी भी प्रकार पूर्ण न होगी। आवश्यकता है कि प्राणियों को वास्तविकता समझ कर जीवन व्यतीत करने की ठीक विधि से परिचय कराया जाय। अथवा जबतक वस्तविकता, सचाई अथवा चौथेपद की शिक्षा को फैलाया न जायगा तबतक जनसाधारण की शान्ति, सुख, सम्पन्नता का स्वप्न पूर्ण नहीं होगा। अस्थाई प्रयत्न जो किसी लोभवश, अथवा शासन के दवाब से किये जावेंगे या पर्दादारी से अज्ञान को फैलाकर सफलता प्राप्त करने की आशा की जायगी वह कुछ समय के पश्चात समाप्त होजावेंगे। यह ठीक है कि शासन का विचार या राज्य-धर्म प्रचार किया करता है किन्तु साथ ही उसमें त्रुटि भी आती रहती हैं।

मैंने निज-अनुभव के आधार पर हुजूर दातादयाल महर्षि जी की परम पुनीत ज्ञात के आदेश से और हुजूर बाबा साँवले शाह की आज्ञानुसार जगत के कल्याण के लिये पुकार की कि मनुष्य बनो। गुरूपशु, तिरियापशु, नरपशु और वेदपशु मत बनो। इस त्रिगुणात्मक जगत में ब्रह्माण्डी मन के प्राकृतिक नियम के अनुसार जीवन व्यतीत करो शुभ संकल्प मस्तु के अभ्यासी बनो और घरेलू जीवन में प्रेम का बर्ताव करो स्पष्ट शब्दों में कहूँगा कि अपने मनको गुरू पारायण बनाओ। जिस प्रकार मानव मन

को सतगुरू की आवश्यकता है उसी प्रकार ब्रह्मांडी मन को भी सतगुरु की आवश्यकता प्रतीत होती है। इन शब्दों को पढ़ कर मनुष्य चकित होंगे कि मैं क्या कह रहा हूँ और मुझे दीवाना कहेंगे। मित्रो ! मैं दीवाना नहीं हूँ वरन् सत्य बात कह रहा हूं। अपने मन में विचार करो कि जब गर्मी का प्रभाव बढ़जाता है, सांस लेना कठिन होता है, स्वयम् आँधी आकर सुलभ करती है। इसी प्रकार मनुष्य जब दुखी होकर अपने अंतर में चला जाता है तो उसे अपने अन्तर में सुख और शान्ती प्राप्त होती है। इसी प्रकार जब ब्रह्मांडी मन जो इस रचना का आधार है और रचने वाला है अपने कर्म से दुखी होता है तो प्राकृतिक नियमानुसार स्वयम् उसका सुधार करनेवाला उत्पन्न होजाता है। तुम पूछोगे कि उसके सुधार का कार्य कौन करता है ? वह श्वेत रंग का प्रकाश जिसे सत्य लोक कहते हैं इसे अपने साथ मिलाकर सुख और शान्ती देता है। किस प्रकार ? जैसे तुम दुखी होते हो, अपने अन्तर जाते हो, शान्ति मिलती है अथवा दिनभर कार्य करने के पश्चात् सोजाते हो और ताज़ दम होकर उठते हो ठीक उसी प्रकार जब यह ब्रह्मांडी मन रचना के क्रम से थक जाता है, दुखी होता है, तो वह सर्वाधार, सतपुरुष, जो प्रत्येक प्रकार के भान-बोध का आधार है, इसी ओर स्नेह की दृष्टि करता है, ध्यान देता है तो रचना में सुख और शान्ति की लहर दौड़ जाती है।

यद्यपि अभी वह समय पूर्णरूप में नहीं आया, किन्तु आरहा है। जब सच्च लोक या महान् प्रकाश या अस्तित्व की शान्त्यात्मक अवस्था समस्त लोक लोकान्तरों में आयेगी और शान्ति, सौख्य तथा सम्पन्नता का युग लायेगी। मानवीय दृष्टि कोण से जिस अस्तित्व द्वारा रचना में शान्ति सौख्य तथा चैन का विचार फैलाता है उसको सामयिक सन्त सतगुरु कहते हैं। वह मनुष्य को जीवित रहने का ठीक रहस्य बताते हैं जिससे

अशांति दूर हो जाती है। और जिसके द्वारा संसार के स्थूल पदार्थों में परिवर्तन होता है। वह ज्योतिष की विद्या बता सकता है। अतः इस समय वास्तविक धर्म, पंथ, कर्म, केवल जीवित रहने की क्रिया है और इस जीवित रहने की क्रिया का नाम ही सतगुरु का ज्ञान है।

जिस प्रकार धर्म, कर्म काण्ड, पूजा पाठ की विधियां इस समय प्रचलित हैं वह वर्तमान समय के लिए उचित नहीं रहे क्योंकि यह सब वास्तव में मनुष्य का अपनी संकल्प शक्ति का खेल है। और मनुष्य अज्ञानवश अपने ही विचार भाव और संकल्प शक्ति के विभिन्न नाम रख कर, विभिन्न प्रकार के रूप बना बनाकर अपने ही विचार और भाव को पूजता है। यह समस्त मानवीय भान-बोध का खेल है। और जब तक मनुष्य बोध-भान के रहस्य से परिचित न होगा वह कालके चक्र से नहीं निकल सकता और न देश से धार्मिक भेद भाव दूर हो सकते हैं क्योंकि विभिन्न गति तथा विचार बोध-भान की जान और प्राण हैं! ब्रह्मांडी मन और मानवीय मन में विभिन्न प्रकार के बोध-भान का युग समय समय पर आता रहता है। जब मनुष्य काफ़ी अनुभव के पश्चात् इनसे घबराजाता है तो सच्चे सुख और शान्ति की खोज करता है। औरों का मुझे कोई ज्ञान नहीं किन्तु मुझे अवश्य ऐसे सुखकी खोज जीवन पर्यन्त रही अब आगे शब्द पढ़ो:—

"अस अस कला अनन्त असंखा। कहाँ लग बरनू भेद सबन का
काल लिया सब लोकन घेरा। दयाल पुरुष कोई मर्म न हेरा
काल कला प्रचंड दिखाई। जीव चले सब उसकी राही
संतन का कोई भेद न जाना। संत मता रहा गुप्त छुपाना ॥२०॥
संत मता खुलकर अब गाऊँ। देकर कान सुनो समझाऊँ ॥२१॥
नहिं पाताल नहीं मर्त्य अकाशा। पांच तत्व नहिं त्रिगुन स्वांसा ॥२२
नहिं शिव शक्ति न पुरुष प्रकृति। ज्योति निरञ्जन नहिं प्रकृति ॥२३॥

तारा मंडल सूरज न चन्दा। पिंड ब्रह्मांड रचा नहिं अंडा ॥२४॥
कुरूम न शेष नहीं औंकारा। माया ब्रह्म न ईश्वर धारा ॥२५॥
आतम परमात्म नहिं नहिं दोई। सुन्न महासुन्न रचा न सोई ॥२६॥
अल्ला खुदा रसूल न होते। पीर मुरीद न दादा पोते ॥२७॥
वेद पुरान कुरान न कहते। मसजिद कावा बाँग न देते ॥२८॥
नहिं त्रिकाल संध्या न नुमाज़ा। तीर्थ व्रत नियम नहिं रोज़ा ॥२९॥
कर्मी शरई थे नहिं भाई। जोगी ज्ञानी खोज न पाई ॥३०॥

तपसी हबसी ज़ाहिदा, नहिं आबिद माबूद।
कुतुब पैगम्बर औलिया, कोई न थे मौजूद ॥
स्वर्ग नर्क दोज़ख़ इरम, अर्ज़ समाँ नहिं होय।
मुसलमान हिंदू नहीं, जैन न ईसा कोय ॥

प्रश्न किया जायगा कि वह वास्तविक माबूद, खुदा और ज़ात क्या है? अ हा हा! क्या उत्तर दूँ शब्द नहीं मिलते जो प्रकट कर सकूँ। फिर भी! अस्तित्व की वह दशा है जहाँ बोध-भान का अभाव है। वह आधार है, परम तत्व है ज़ात है शेष जो कुछ है वह सब विशेषता है। मेरा समस्त जीवन उस खुदा मालिक, राम, ज़ात की खोज में व्यतीत हुआ है और जो अनुभव हुआ वह यह है कि वह अस्तित्व की वह अवस्था है जहाँ बोध-भान समाप्त हो जाते हैं। बुद्धिमान जगत का प्राणी मेरी बात को नहीं समझ सकेगा क्योंकि वह समझता है कि जहाँ बोध-भान नहीं है तो फिर वहाँ क्या है। किंतु मित्रो! वहाँ क्या है उस ओर संकेत करता है।

बिन करनी अभ्यास के, कहन सुनन से दूर।
समझाऊँ कैसे उसे, मेरा ही है क़सूर ॥
आशा थी मेरी कर जाऊँगा, निज अनुभव का इज़हार।
इज़हार के लिए मजबूर हूं, मगर मैं गया हूं हार ॥

फिर भी कर्म भोग वश, कहता हूँ हेला मार।
अहसासात के परे, ज्ञात है वह परमदयाल ॥
सैन बैन सब कर गये, होकर के लाचार।
मैं प्रकटा हूं जगत में, नाम मेरा डन्डा मार ॥
डंडे मेरे वचन हैं, समझो करो विचार।
बिन समझे कोई ना गया, भव सागर के पार ॥

चूंकि प्रत्येक प्रकार के भान-बोध, भाव, विचार ब्रह्माण्डी मन के कारण उत्पन्न होते हैं इस लिए बोध-भान और विचारों से ऊपर जाने पर वह वस्तु रह जाती है जो इन सबका आधार है, वह है प्रकाश।

प्रथम प्रकाश का रूप बन, जो वास्तविक ब्रह्म अथवा कर्ता है। कैसे ? दसवें द्वार से आगे जाओ। अपना इष्ट प्रकाश को बनाओ और जब तक वह प्रकट नहीं होता किसी ऐसे पुरुष का सतसंग करो जो स्वयम् प्रकाश रूप हो चुका है। जब सुरत प्रकाश रूप हो जाती है, प्रत्येक प्रकार के विचार और बोध-भान समाप्त हो जाते हैं अस्तित्व स्वयम् प्रकाश का रूप धारण करके उसमें विचरण करता है। वहां न ईश्वर का विचार होता है न गुरु का न ब्रह्म का न माया का। आदि संत कबीर साहेब की वाणी सुनो

हंसा लोक हमारे अइयो। वाते अमृत फल तुम पइयो ॥
लोक हमारा अगम दूर है, पार न पावे कोई।
अधि अधीन हो जो कोई आवै, ताको देउँ लगाई ॥हंसा॥
मृत्यु लोक से हंसा आवे, पुहप देश चल जाई
अम्बु द्वीप में सुमिरन करि हो, तब वह लोक दिखाई ॥हंसा॥
ताटी का पिंड छूट जायगा, यह तो सकल विकारा।
ज्यों जल माहिं रहत कमल है, ऐसा हंस हमारा ॥हंसा॥
लोक हमारे अइयो हन्सा, तब सुख पइयो भाई।
सुख सागर स्नान करोगे, अजर अमर होइ जाई ॥हंसा॥

कहैं कबीर सुनो धर्मदासा, हंसन करो बधाई।
सेत सिंहासन बैठक दैहौं, जुग जुग राज कराई ॥हंसा०॥

ऐ भोले भाले प्राणी ! ऐ भोले भाले दुखी प्राणी !! जब तक तू स्वयम् प्रकाश या ब्रह्म का रूप नहीं बनता वह अमृतफल प्राप्त नहीं होता। अर्थात् स्थायी जीवन को प्राप्त नहीं करसकता। यद्यपि वास्तविकता के दृष्टि कोण से स्थायी जीवन तो अब भी प्राप्त है किन्तु भान-बोध या मनके चक्कर में ब्रह्मांडी मन के कारण हम अपने वास्तविक प्रकाश रूप से पृथक होकर दुख सुख के भागी बन रहे हैं।

बेसाख हुये और बने पराये।
खुद अजर अमर होते दुख सुख में आये॥
सत पुरुष को दया आई, नर तन धर आये।
बचन सुना कर भ्रम मिटाकर अपनाधामदिलाये॥
बड़े भाग खुद को पहिंचाना, और हम हरषाये।
पहुप द्वीप यह प्रकाश का मण्डल कहलाये॥
इसी में आनन्द मस्ती और सरूर रहाये।
मस्ती में अलमस्त होकर सुमिरन कराये॥

इसी लिये मित्रो ! सोचो वास्तविक धर्म क्या है ? अपने आप को प्रकाश रूप बनाना। इसी की शिक्षा प्राचीन ऋषियों ने गायत्री मंत्र में दी है और यही फ़क़ीरों,संतों और साधुओं की शिक्षा का सार है। यद्यपि इस से आगे भी बहुत कुछ है किन्तु उसके अधिकारी बहुत कम हैं। फिरभी उल्लेख करता हूं। प्रकाश जो इस रचना को व्यक्त करने वाला है वह स्वयम् व्यक्त में आई हुई वस्तु है। स्मरण रहे कि प्रकाश सदैव किसी वस्तु से उत्पन्न होता है। किससे ? वह है शब्द और ध्वनि। अस्तित्व के हिलोर के क्रम में शब्द और प्रकाश होता रहता है और यह शब्द और प्रकाश ही अपनी रचना करता रहता है।

लाखों तरह की रचना करता है यह नूर और कलाम।
यह ज्ञान मिला अनुभव हुआ और जुस्तजू का निकला अंजाम॥
हस्ती इन्सान है बुलबुला होता है उसका इख्तताम।
जबतलक है जिन्दगी इन्सान को चाहिए, करता रहे काम॥
न राम राम जपे और न कोई करे प्राणायाम।
यह सब साधन एहसासात का खेल है और बेकाम॥

अब प्रश्न होगा कि मालिक क्या है? जात क्या है? वह अनाम है, अरूप है, न किसी को उसका पता लगा न लगेगा। अस्तित्व खोज करता हुआ स्वयम् लुप्त हो जाता है, किन्तु उसकी गम नहीं मिलती। सबने उसको बे अन्त, अरङ्ग और अरूप कह कर मौन धारण किया है।

समस्त जीवन की दौड़ धूप और खोज के पश्चात् अन्त में इस पर परिणाम पहुँचा कि जब तक जीवन है मनुष्य काम करे और जिस समय कोई काम न हो अपने आप को शब्द के प्रकाश के सहारे स्थिर रखकर मानसिक व आत्मिक शान्ति प्राप्त करने का प्रयत्न करता रहे। मानसिक और आत्मिक शान्ति के लिये मेरी समझ में यदि कोई उपाय आया है तो वह केवल आन्तरिक साधन है अर्थात् अन्तर में शब्द और प्रकाश का साधन करो और वाह्य जीवन में प्रसन्नता पूर्वक रहने के लिये जीओ और जीनो दो के नियम को अपनाते हुये काम से सम्बन्ध रक्खो। किन्तु चूँकि जन-साधारण का भ्रम, शंका, अज्ञान सुगमता से दूर नहीं होता, इसलिए, पूर्ण पुरुष के सतसङ्ग की अत्यन्त आवश्यकता है। किन्तु खेद इस बात का है कि प्रथम तो सतसङ्ग करने वाले तमाशे, झमेले, जम, आडम्बर और टीप टाप में खोजाते हैं, दूसरे सतसङ्ग कराने वाले स्वयम् उनके रुझान का लाभ उठाने के लिए जीवों को भ्रम और अज्ञान में डाल देते हैं।

काम ही है इबादत, काम ही है नाम।
मगर काम हो निष्काम भाई, वरना दुख का धाम॥
गुरू परायण बनके सीखो ज़िन्दगी गुज़ारना।
भ्रम अज्ञान जंजाल को सतसङ्ग से विसारना॥
नहरू है हमारा सच्चा सिपाही, देता है सच्चा संदेश।
जग में जीओ और काम करो यही है सच्चा उपदेश॥
आरहा है वक्त जब सन्त मत राज धर्म होगा।
मनुष्य सुख और शांति से जन्म अपना वितायेगा॥

सन्त मत में केवल गुरू भक्ति है और वह भी पूर्ण पुरुष की गुरू भक्ति का अर्थ है सतसङ्ग यदि कोई सतसङ्ग करना जानता हो। आज बेसाखी के दिन बेसाख हुये अशांत प्राणियों को अपना निज अनुभव सुनाकर देश के बड़े बड़े नेताओं और विद्वानों से कहता हूं कि वह मेरी वाणी को शान्त चित होकर विचार करें और जन साधारण का ठीक पथप्रदर्शन करें।

है यह सचाई मेरी बहतर साला ज़िन्दगी का निचोड़।
उम्र मैंने है गुज़ारी बानियों ने सर को दिया था फोड़॥
जुड़ गया जो बेसाख था अब होकर के फ़क़ीर।
बे ख़ौफ़ होकर कह रहा सब तोड़ कर भ्रम ज़न्जीर॥

विनती

तेरा दिया हुआ संस्कार तेरे अर्पन कर रहा।
मेल ले अब गोद अपनी काम अपना कर लिया॥
लब खुले और बन्द हुये ज़िन्दगानी थी मेरी।
मध्य अवस्था के खेल को अब खूब हमने देख लिया॥
राधास्वामी राधास्वामी राधास्वामी खुद हुआ।
सबको अपना रूप समझ कर मैं भी मित्रो चुप हुआ॥

हमारी जिव्हा

(ले० महर्षि शिवव्रतलाल जी महाराज)

लुक़मान हकीम आरम्भिक अवस्था में किसी कठोर स्वभाव यूनानी का सेवक था। उस व्यक्ति ने एक दिन अपने मित्रों का प्रीतिभोज किया और लुक़मान से कहा "जहां तक सम्भव हो तुम अच्छे से अच्छा मांस भोज के अवसर पर मोल लाओ।" लुक़मान ने अपने विचार के अनुसार आज्ञा का पालन किया। मित्र निमंत्रित किये गये। दस्तरख्वान चुना गया। जब खाने का समय आया, सबने रकाबियों के ढकने को उठाया। इनकी रकाबी में जिव्हा के अतिरिक्त और कुछ न था। सबको आश्चर्य हुआ। लुक़मान का स्वामी क्रोध से आग बबूला हो गया और कहने लगा 'क्यों जी ! क्या मैंने नहीं कहा था कि अच्छे से अच्छा मांस मेरे मित्रों के खाने के लिये लाना ?" लुक़मान ने उदासीनता से उत्तर दिया 'खुदाबन्द नामत ! मैंने अक्षरशः आपकी आज्ञा का पालन किया। भला बताइये तो सही मनुष्य के शरीर में जिव्हा से श्रेष्ठ क्या वस्तु है ! इसी से भगवान् का गुणानवाद किया जाता है। इसीसे फिलसफा व विज्ञान का प्रकाशन होता है। इसीसे शिक्षा और कला की नहरें प्रकट होती हैं। मनुष्यों को दूसरों पर जो कुछ बड़प्पन प्राप्त होता है वह केवल जिव्हा के कारण है। जिव्हा न होती तो क्या कभी यह सम्भव था कि वह इस प्रकार शिक्षा व कला कौशल में उन्नति करता ? कभी नहीं। मेरी समझ में जिव्हा मनुष्य शरीर में श्रेष्ठ अङ्ग है और इसीलिए मैंने आपकी आज्ञा के अनुसार दस्तरख्वान पर केवल जिव्हा ही के चुने जाने का प्रबन्ध किया।' स्वामी चुप होगया। मित्रों से क्षमा माँगी और लुक़मान की ओर बुरी दृष्टि से देखकर कहने लगा, 'बहुत अच्छा। यदि तुम्हारी समझ में जिव्हा श्रेष्ठ अङ्ग है तो कल तुम मेरे मित्रों के खाने के लिए बुरे से बुरा माँस लाओ।'

लुक़मान ने सिर झुका लिया। मित्र चले गये। दूसरे दिन पुनः नियत समय पर आये। सबको आश्चर्य था कि देखिये! आज क्या वस्तु मेज़ पर चुनी जाती है? जब सबने ढकना उठाया तो पहले दिन की भांति सब की रकाबियों में जिव्हा ही जिव्हा रक्खी मिली। मित्र बहुत चकित हुये। आज स्वामी के क्रोध का बारा पार न था। वह क्रोध को न रोक सका और प्रचन्ड क्रोधाग्नि में आकर कहने लगा 'नालायक़! बदमाश!! कल जिह्वा श्रेष्ठतर मांस थी आज बुरा मांस कैसे हो गई!" लुक़मान ने उदासीनता से कहा "खुदाबन्दे नामत! जिव्हा से बुरी क्या वस्तु है? इसी से गालियाँ दी जाती हैं। इसीसे लड़ाई झगड़े पैदा होते हैं, इसीसे घर उजड़ जाते हैं, राज्यों में उथल पुथल होती है, षडयंत्र किए जाते हैं। तात्पर्य यह है कि जितनी भी बुराइयां हैं सब रसना के कारण हैं आप ही बताइये कि मैंने क्या त्रुटि की? स्वामी चाहता था कि लुक़मान को इस मूर्खता के लिए दण्ड दें, किन्तु मित्रों ने बीच बिचाव कर दिया। लुक़मान की बुद्धिमानी की प्रशंसा की और कौन जाने उसी समय से स्वतन्त्रता के धन से लाभ उठाने का अवसर मिला हो।

—❀०❀—

यह कहानी है। कौन जाने कि यह सत्य है अथवा असत्य। किन्तु सोचने के लिए उससे कैसे अच्छी २ शिक्षा मिलती हैं। यथार्थ में इस रसना की हमारे शरीर में कैसा अनोखा स्थान है। शास्त्रकारों का कथन है कि इस रसना की शक्ति का क्या ठिकाना है। यह अग्नि है। आग से बनी हुई है जिस समय प्रचण्ड हो जाती है चारों ओर से ज्वालामुखी बन कर अधिक भयानक अग्नि वर्षा करने लगती है। किन्तु साथ ही साथ रसना शीतलता का गुण भी रखती है। तात्पर्य यह है कि यह एक ऐसी अनोखी वस्तु है कि एक स्थान पर वह लड़ने के लिए उत्तेजित करती है

किन्तु दूसरे स्थान पर लड़ने वालों को सन्धि के लिए प्रस्तुत कर देती है। यह द्वन्द्व अवस्था रसना के अतिरिक्त और किस वस्तु में मिलेगी। यही रुलाती है, यही हँसाती है। कर्म इन्द्री भी है और ज्ञानेन्द्री भी। गोस्वामी तुलसीदास जी महाराज की वाणी है—

राम नाम मणि दीप धरि, जीह देहरी द्वार।
तुलसी भीतर बाहिरहु, जो चाहसि उजियार॥

यही हमको मोक्ष पद का अधिकारी बनाती है।

परमदयाल फ़क़ीर साहबजी महाराज का
पत्र पूज्य हुज़ूर नरायनसिंह जी महाराज के नाम

सरदार क़ाबिलसिंह जी मिले और आपकी याद आगई। वह चले गये। मैं अब अकेला हूँ:—

तू मुसाफ़िर रहा है किसी मंज़िल पै पहुंचने का।
मालूम नहीं आपको ज़िन्दगी में क्या मिला॥
मैं मुसाफ़िर था और अब भी सफ़र कुछ है बाक़ी।
अपना अनुभव कहता हूँ गो कहने को नहीं कुछ बाक़ी॥
बुलबुलाये हस्ती साबित हुआ इन्सान की ज़िन्दगी।
बुलबुला कैसे बना यह थी मेरी कुरीदे ज़िन्दगी॥
समझा अनसमझी के बराबर वह समझ लारही है मस्ती।
हस्ती मस्ती है मस्ती हस्ती है यही है हस्ती॥
बुलबुला टूट जाता है कभी तो लामुहीत होती है हस्ती।
वहां पै न हस्ती का अहसास है न अहसासे मस्ती॥
फिर कौन हैं हम? क्या हैं? एक बुलबुलये हस्ती।
उसमें एक अज्ञान था उसकी थी मस्ती॥

जीव बने कभी ईश्वर बने और ब्रह्मास्मी कहा ।
हज़ारों खेल खेले और खेलों में मस्त रहा ॥
अब मालूम हुआ फक़त एक अज्ञान का खेल था ।
जीव था न ब्रह्म था न कुछ और था ॥
चेले बने अज्ञान था, गुरू बने वह भी अज्ञान था ।
जो कुछ बने कुछ न था एक बहमो गुमान था ॥
अब मी अज्ञान में आकर के हूं लिख रहा ।
कालो माया की दुनियां में नहीं कोई और चारा ॥
अब आरजू है यही हो जाऊँ गुम इस तरह ।
जिस तरह बूँद समुन्दर में मिली और निशान बाक़ी न था ॥
लब खुले और बन्द हुए यह राज़ है पाया ।
बक़फ़ा खुलने और बन्द होने का निकला कालोमाया ॥
मनाज़िल फुक़रा जिनका मिला था ख़्याल ज़िन्दगानी में ।
उनको हस्ती के अहसासात का खेल है पाया ॥
उस मालिक के मिलने की तमन्ना थी बचपन से ।
उसको हमने एक हालते बेहालती पाया ॥
सुरत शब्द के योग से अनुभव हुआ है ऐसा ।
इस अनुभव को ऐ बादर बुजुर्ग साफ़ कह गाया ॥

अब तक है ज़िंदगी काम है मेरा क्या ?
मेरा क्या करा रही है मौज जैसा ॥
न कुछ करना न धरना तमब्बुज हस्ती में है बहना ।
राज़ी व रज़ा का जेबर है पहना ॥
एक मुअम्मा न हल हुआ ज़िन्दगी में मेरे भाई ।
क्या ग़रज़ थी मौज को जिसने रचना रचाई ॥

बना के लोक लोकांतर देश देशांतर और ज़िंदगियाँ।
जीव जन्तु बन के क्यों दुख सुख भोगें यहाँ॥
'जिस ठाकुर से नहीं चारा तिसको है सदा सदा नमस्कारा।'
इसका यह जवाब दे गया था गुरू नानक प्यारा॥
मगर तस्कीन इस से मुझ को भला आई नहीं।
तलाश इस बात से तबियत घबराई नहीं॥
खोजता खोजता जब आप में गुम हुआ।
यह मुअम्मा नज़र से मेरे तब ओझल हुआ॥
जग के दुखी प्राणियों के असरात जब आते हैं।
इसी तलाश को दिल में मेरे फिर लाते हैं॥
कभी कभी मस्ती में अनुभव यह होता है मुझे।
संसार यह है भाई नहीं बहम है और ख़ब्त मुझे॥

क्या आपके पास कोई उत्तर है? कि संसार क्यों बना है? मुझे तो केवल यह उत्तर मिलता है:—

जिस तरह आग में गर्मी देने का गुण कर्म स्वभाव।
इसी तरह हस्ती में है रचना करने का स्वभाव॥
दम ब खुद रहना पड़ता है संतों और फ़क़ीरों को भी।
इसके सिवा मेरी समझ में नहीं है कोई जवाब॥

इसलिये ज्ञान पंथ का त्याग कर भक्ति पंथ का पैरोकार होने के लिये मजबूरी है।

—❀०❀—